नाट्यम् 99-102

भट्टनारायण विशेषांक

नाट्यम्

99–102

भट्टनारायण विशेषांक

संस्थापक संपादक
राधावल्लभ त्रिपाठी

संपादक
आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

प्रबन्ध संपादक
सञ्जय कुमार

संपादक मण्डल
नौनिहाल गौतम, रामहेत गौतम
शशिकुमार सिंह, किरण आर्या

प्रकाशक
नाट्य परिषद्, संस्कृत-विभाग
डाक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय) सागर, (म.प्र.)

नाट्यम् **99-102, अक्टूबर 2021-सितम्बर 2022**
रंगमंच एवं सौन्दर्यशास्त्र की पूर्वसमीक्षित त्रैमासिक शोधपत्रिका
भट्टनारायण विशेषांक
ISSN : 2229-5550
UGC Care List Journal, S.N.17
नाट्य परिषद् **(पंजीकरण क्र. 100066)**
संस्कृत-विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म.प्र.)
दूरभाष-फैक्स (कार्यालय) 07582-264366 पिन-470 003

Natyam : A Quarterly Journal of theatre and aesthetics
published by Natya Parisad. Deptt. of Sanskrit,
Doctor Harisingh Gour University, Sagar,
Madhya Pradesh-Pin-470 003. India.
Phone-Fax (off.) : 07582-297149

सदस्यता शुल्क :
विशेषांक - 200/- रु.
प्रत्येक अंक - 100/- रु., वार्षिक - 400/- रु.
वार्षिक सदस्यता व्यक्तिगत - 2000/- रु.
पांच वर्षीय सदस्यता (संस्थागत) - 5000/- रु.
इस अंक का मूल्य - 200/- रु.

यह शुल्क मनीआर्डर, चेक या नगद दिया जा सकता है
जो नाट्य परिषद्, संस्कृत-विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के नाम देय होगा।

पत्रव्यवहार :
प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म.प्र.) 470003
e-mail : sanskritsagar1946@gmail.com
natyamsagar@gmail.com
07582297149 Mob : +919425656284
© सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रण : अजय जैन, **अमन प्रकाशन** नमक मंडी,
कटरा, सागर (म.प्र.) मो. 9826434225

नाट्यम् में प्रकाशित नाटकों के अनुवादों/रूपान्तरों या किसी भी अन्य सामग्री की किसी भी रूप में प्रस्तुति के लिए *नाट्य परिषद्* से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति अथवा विचारों से *नाट्य परिषद्*, संपादक या संपादक मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है।

सम्पादकीय

'नाट्यम्' शोध पत्रिका अपनी प्रकाशन-यात्रा में शतक पूरा कर रहा है। यह 99-102 वां(संयुक्ताङ्क) अंक सातवीं शताब्दी के महत्त्वपूर्ण नाटककार भट्टनारायण और उनके वेणीसंहार पर केंद्रित है। इसके पूर्व प्रकाशित नाट्यम् के विशाखदत्त, रामजी उपाध्याय, मृच्छकटिक विशेषांक संस्कृत जगत् में विशेष समादृत हुए हैं।

भट्टनारायण रचित वेणीसंहार पर कोई आलोचनात्मक पुस्तक उपलब्ध नहीं होती है। स्फुट रूप से जो सामग्री मिलती है उससे भट्टनारायण के जीवनवृत्त और वेणीसंहार का समग्र साहित्यिक परिचय नहीं मिलता है। भाव पक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से वेणीसंहार पर केंद्रित कुल तीस लेखों में विभिन्न पक्षों पर विद्वानों ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। वेणीसंहार में बहुनायकत्व, वेदों का प्रभाव, शिवतत्त्व, धर्मशास्त्रीय पक्ष, दार्शनिक दृष्टि, वर्णाश्रम व्यवस्था, नारी अस्मिता, आर्थिक चिंतन, राजधर्म, पर्यावरण दृष्टि, नाट्यशास्त्रीयता, भाषा, रस, छंद, अलंकार, रीतितत्त्व, वक्रोक्ति योजना, औचित्य विचार का काकु सौंदर्य आदि विषयों पर विद्वानों ने गहन विचार विमर्श इस अंक में किया है।

महाभारत के बृहद् पौराणिक आख्यान में द्रौपदी के चीरहरण से कौरवों और पांडवों के मध्य उपजी शत्रुता और उसका दुष्परिणाम नाटक की विषयवस्तु है। नाटककार अपने उद्देश्य में कितना सफल हुआ है इस पर विद्वानों के अपने -अपने अभिमत हैं। नाटककार ने अपनी लेखन क्षमता और नाट्य दृष्टि का परिचय देते हुए वेणीसंहार को एक सफल नाट्य कृति के रूप में प्रस्तुत किया है। सभी लेखकों ने पर्याप्त चिंतन और मनन के उपरांत अपने विषय का शोधपरक प्रतिपादन किया है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे मनीषी विद्वान् का लेखकीय सहयोग और प्रेरणा हमारे लिए आशीर्वाद स्वरूप है। हर अंक में प्रो. त्रिपाठी की लेखकीय उपस्थिति नाट्यम् पत्रिका के लिए विशेष उपलब्धि है। अपनी तमाम अकादमिक व्यस्तता के बावजूद वे हमारे लिए समय निकाल लेते हैं, यह उनकी उदारता है। वस्तुतः वे हमारी आस्था के संबल हैं।

विभागीय अध्यापकों के रचनात्मक सहयोग से ही यह कार्य संभव हुआ है। नाट्यम् के प्रबंध संपादक डॉ. सञ्जय कुमार जिस निष्ठा और समर्पण के साथ

हर अंक के लिए विषय निर्धारण, सामग्री संकलन और प्रकाशन तक जुटे रहते हैं, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

इस अंक में सभी लेखकों के रचनात्मक सहयोग के लिए हम कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। नाट्यम् के प्रकाशनार्थ सभी विद्वानों का सहयोग हमारे लिए मूल्यवान् है। आशा है कि संस्कृत के अध्यापक, शोधार्थी और उच्च कक्षाओं के विद्यार्थीगण नाट्यम् पत्रिका से जुड़ेंगे और अपनी सकारात्मक सोच के दायरे में नाट्यम् पत्रिका के गौरव में श्रीवृद्धि करेंगे। यू. जी. सी. लिस्टेड होने के कारण नाट्यम् शोध पत्रिका की महत्ता और लोकप्रियता में चार चांद लग गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि नाट्यम् पत्रिका का यह विशेषांक सुधीजनों को अवश्य पसंद आयेगा।

हार्दिक शुभकामनाएं।

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

अनुक्रम

1. **भट्टनारायण और वेणीसंहार : कुछ विचार** 7
आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

2. **प्रबंध में द्विविध अंगीरस और बहुनायकत्व की अवधारणा तथा वेणीसंहार** 17
राधावल्लभ त्रिपाठी

3. **भट्टनारायण की दार्शनिक दृष्टि** 26
चन्दनलाल गुप्ता

4. **वेणीसंहार का धर्मशास्त्रीय पक्ष** 35
दीपक तिवारी

5. **वेणीसंहार में वर्णाश्रम व्यवस्था** 41
साधना मौर्या

6. **वेणीसंहार में नारी अस्मिता** 47
आशा सिंह रावत

7. **वेणीसंहार में आर्थिक चिंतन** 55
गटुलाल पाटीदार

8. **वेणीसंहार में राजधर्म** 65
सञ्जय कुमार

9. **वेणीसंहार में वैदिकीय विविध पक्ष** 74
सत्येन्द्र कुमार यादव

10. **वेणीसंहार में शिवत्व भाव** 81
दिव्या

11. **वेणीसंहार में मानवेतर प्रवृत्ति** 88
चन्द्र किशोर शास्त्री

12. **वेणीसंहार की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा** 94
प्रवीण कुमार

13. **वेणीसंहार में श्रीकृष्ण** 99
अवधेश कुमार

14. **वेणीसंहार में पुरुष पात्र** 106
ऋचा मुक्ता

15. वेणीसंहार में व्यक्तित्व के विविध पक्ष — 117
रामहेत गौतम
16. वेणीसंहार नाटक में मार्मिक प्रसंग — 132
सिद्धनाथ खजुरिया
17. वेणीसंहार नाटक के अर्थोपक्षेपक — 142
ममता गुप्ता
18. वेणीसंहार में नाट्य सन्धियाँ — 157
आरती मीणा
19. वेणीसंहार में 'तत्करोति तदाचष्टे' — 163
किरण आर्या
20. भट्टनारायण का भाषा-कौशल — 168
दिव्या देशपाण्डे
21. वेणीसंहार का सूक्ति-सौन्दर्य — 176
नौनिहाल गौतम
22. वेणीसंहार में रसोद्भावना — 181
तरुण कुमार शर्मा
23. वेणीसंहार में अद्भुत रस — 188
बाबूलाल मीना
24. वेणीसंहार में अलंकार योजना — 196
लक्ष्मी नारायण
25. वेणीसंहार में छन्द प्रयोग — 200
चन्द्रपाल लोधी
26. वेणीसंहार में रीतितत्त्व — 207
सचिन देव द्विवेदी
27. वेणीसंहार में वक्रोक्ति-योजना — 214
शिवपूजन चौरसिया
28. भट्टनारायण का काकु सौन्दर्य — 222
राघवेन्द्र शर्मा
29. वेणीसंहार में व्यंजकता — 230
तारेश कुमार शर्मा
30. वेणीसंहार नाटक में औचित्य साधना — 244
शशिकुमार सिंह, नीरज कुमार
31. लेखक परिचय — 252

1

भट्टनारायण और वेणीसंहार : कुछ विचार

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

संस्कृत नाट्य-साहित्येतिहास में भट्टनारायण और उनकी सुप्रसिद्ध नाट्य कृति 'वेणीसंहार' का महत्त्व निर्विवाद है। संस्कृत विद्वानों ने प्रायः इस नाटक के वैशिष्ट्य को रेखांकित किया है। संस्कृत रंगमंचीय प्रस्तुति की दृष्टि से इस नाटक की विषयवस्तु और शिल्प की अपनी महत्ता है, किन्तु अनेक विद्वानों की दृष्टि में इसे सफल अभिनेय नाटक कहना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत हुआ है। नाट्यशास्त्र की कसौटी की दृष्टि से भी 'वेणीसंहार' की सफलता पर विशेषज्ञों की आम राय नहीं रही है। संरचनात्मक दृष्टि से भी इस नाटक को अपेक्षाकृत कम परिपक्व माना गया है। अस्तु, सभी लेखकों और रचनाओं के महत्त्व को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता है। सबकी अपनी विशेषताएं होती हैं। सबका एक दृष्टिकोण होता है। उसी रूप में भट्टनारायण को भी जानने-समझने की आवश्यकता संस्कृत जगत् में अपेक्षित है।

'वेणीसंहार' पर विचार करने के पूर्व भट्टनारायण के जीवन पर प्रकाश डालना हमें अपरिहार्य प्रतीत हुआ है। अपने एकमात्र नाटक 'वेणीसंहार' के बूते संस्कृत जगत् में अपनी उपस्थिति का गहरा एहसास बनाये रखने में भट्टनारायण समर्थ रहे हैं। यह कम उल्लेखनीय बात नहीं है। भट्टनारायण के जीवन का सामान्य परिचय भी प्रमाणिक तौर पर नहीं मिलता है। इसके बावजूद उनका जीवनवृत्त कोई रहस्यमय पहेली नहीं रहा होगा। यह उनकी नाट्य रचनाशीलता से ज्ञात होता है। अपने बारे में वे 'वेणीसंहार' में कहीं भी मुखरित नहीं हुए हैं। अन्यत्र भी उनके विषय में मामूली सी जानकारी उपलब्ध हुई है। इसीलिए उनके प्रामाणिक जीवनवृत्त के विषय में विद्वानों ने कभी कोई ठोस दावा भी नहीं प्रस्तुत किया है।

फिर भी, प्रस्फुट तौर पर कुछ तथ्य भट्टनारायण के सम्बन्ध में हमें विद्वानों के विचारों के रूप में अवश्य पढ़ने को मिलते हैं। भट्टनारायण के जन्म और परिवार के विषय में इतिहास और साहित्य दोनों लगभग मौन है। आंतरिक साक्ष्य के अभाव में वाह्य साक्ष्य ही भट्टनारायण के विषय में जानने का आधार रहा है। जैसे क्षितीशवंशावली चरित, राजावली, बंगराजघटक तथा दक्षिणाराधीयघटक में भट्टनारायण के सम्बन्ध में अतिसंक्षिप्त इतिवृत प्राप्त होता है।

जहां तक नाम का प्रश्न है तो भट्टनारायण ने 'वेणीसंहार' नाटक की प्रस्तावना में अपने विषय में कुछेक पंक्तियां कही हैं - ''यदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य तिवेणीसंहारं नाम नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम्।''[1] आशय यह है कि यहां भट्टनारायण को 'कवि मृगेंद्र' कहा गया है। इसके अलावा उनके विषय में अन्य कोई जानकारी इस नाटक में नहीं प्राप्त होती है। अलबत्ता, संस्कृत विद्वानों के कुछ शोधलेखों में बंगाल के राजाओं का परिचय देने के क्रम में भट्टनारायण का उल्लेख मात्र आया है जो भट्टनारायण को जानने का मुख्य स्रोत है। सबसे प्रमुख स्रोत 'क्षितीशवंशावली चरितम्' ग्रंथ है जिसके अनुसार भट्टनारायण कान्यकुब्ज के निवासी थे। वे शांडिल्य गोत्र में उत्पन्न सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके विषय में ठाकुर यानी रवीन्द्रनाथ टैगोर की पारिवारिक - परंपरा के हवाले से बताया गया है कि भट्टनारायण जाति के ब्राह्मण थे और बंगाल में सेनवंश के राजा गौड़ाधिपति आदिसूर ने उन्हें कान्यकुब्ज से बंगाल बुलाया था। वैदिक अनुष्ठान संपन्न कराने के निमित्त राजा आदिसूर ने भट्टनारायण को दक्षिणा में पांच गांव प्रदान किये थे। इस प्रसंग में जो कथाएं राजवंशावलियों में मिलती हैं उसमें हरेक कथा में कन्नौज से जिन ब्राह्मणों के बुलाये जाने का उल्लेख है उनमें भट्टनारायण का नाम प्रमुखता से आया है। वे उन पांच ब्राह्मणों में प्रधान पंडित थे। आदिसूर ने भट्टनारायण को प्रधान पंडित बनाकर सम्मान दिया था। जनश्रुति है कि संपत्ति का विस्तार होने पर भट्टनारायण स्वयं बंगाल के एक राजवंश के प्रवर्तक बन गए थे। भट्टनारायण के विषय में उपलब्ध किंवदंतियों में प्रमुख कथाप्रसंग इस प्रकार हैं-

1. आदिसूर के अकालग्रस्त बंगाल राज्य में वर्षा कराने के उद्देश्य से कन्नौज के पांच ब्राह्मणों को बुलाया गया था जिनमें भट्टनारायण प्रमुख थे।
2. 'क्षितीशवंशावलीचरित' के अनुसार आदिसूर का शूद्र राजा होने के कारण

वैदिक अनुष्ठान के लिए बंगदेशवासियों के इंकार करने पर कन्नौज से ब्राह्मणों का बुलाया जाना ।

3. अपने देश पर आसन्न विपत्तियों से बचने हेतु कान्यकुब्ज (कन्नौज) से पांच सनातनधर्मी स्मार्त कर्मानुष्ठाननिष्ठावन्त ब्राह्मणों को आमंत्रित किया गया था।
4. 'बंगराजघटक' के अनुसार आदिसूर ईश्वर को प्रसन्न करने हेतु एक महायज्ञ कराने के इच्छुक थे। उसके राज्य के ज्ञानी पंडित ऐसा उपाय बतलाने में असमर्थ सिद्ध हुए। एक परमज्ञानी ब्राह्मण की खोज पूरी होती है कन्नौज से आमंत्रित विद्वान ब्राह्मणों में भट्टनारायण को पाकर। वे परम सनातनधर्मी प्रख्यात पंडित थे।
5. कन्नौज का परित्याग करने और बंगदेश में बसने का मुख्य कारण सनातन धर्म का तिरस्कार और उत्पीड़न था। सनातन धर्म के विरोध के मूल कारण में बौद्ध धर्म के प्रभाव को संकेतित किया गया है। संभवतः वैदिक धर्मानुयायी ब्राह्मण वर्ग के लोग उत्पीड़न से त्रस्त होकर कान्यकुब्ज देश का परित्याग करने को विवश हुए और जीवन व धर्म की सुरक्षा हेतु बंगदेश में बस गए। भट्टनारायण भी उन्हीं में से एक व्यक्ति थे।

इन सभी कथा प्रसंगों में भट्टनारायण का जिक्र किया गया है, किंतु इन सारे घटनाप्रसंगों का तथ्यात्मक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। हां, एक बात अवश्य सत्य प्रमाणित होती है कि 'क्षितीशवंशावलीचरितम्', 'बंगराजघटक', 'राजावली' एवं 'दक्षिणराधीयघटककारिका' में जिन ब्राह्मणों के कन्नौज से बंगाल यानी गौड़ प्रदेश में आने का उल्लेख मिलता है उनमें भट्टनारायण का उल्लेख मिलता है।

उपर्युक्त सभी मतों को विद्वानों ने आधारहीन मानकर खारिज कर दिया है। सच तो यह है कि 'वेणीसंहार' में नाटककार ने कहीं भी उक्त प्रसंगों का उल्लेख नहीं किया है। इस बात से हम समझ सकते हैं कि आदिसूर नामक किसी राजा और उसके राज्य से भट्टनारायण का दूर- दूर तक कोई सम्वन्ध नहीं रहा होगा।

यह भी कहा जाता है कि बौद्धों के उत्पीड़न के कारण भट्टनारायण को अपनी मातृभूमि त्यागना पड़ा था। किंतु, यह घटना भी उनके 'वेणीसंहार' नाटक में कहीं भी अंकित नहीं हुई है। गौड़ नरेश आदिसूर के आमंत्रण पर भट्टनारायण का बंगदेश जाने का प्रसंग भी 'वेणीसंहार' में नहीं वर्णित है। अनुमान तो कई और भी

लगाये गये हैं। मसलन वेणीसंहार की रचना भट्टनारायण के बंगाल जाने के पूर्व की है, या कि आदिसूर के यहां आगे ब्राह्मणों में भट्टनारायण एक नहीं, अलग अलग दो व्यक्ति रहे हों। 'क्षितीशवंशावली चरित' में भी उनके कवित्व आदि का वर्णन कहीं नहीं मिलता है। एक और तथ्य है कि समीक्षकों ने नाटक के प्रथम अंक के पच्चीसवें श्लोक में 'रणयज्ञ' सम्बन्धी वर्णन से ज्ञात होता है कि आदिसूर ने एक यज्ञ करवाया था। इसलिए भट्टनारायण दो नहीं एक ही व्यक्ति रहे होंगे। किंतु इन सभी बातों का कोई प्रमाणिक साक्ष्य नहीं मिलता है। इस सारी कवायद से यह अवश्य कहा जा सकता है कि भट्टनारायण कान्यकुब्ज देश के निवासी नाट्य लेखक थे और वे गौड़ नरेश के आमंत्रण पर बंगदेश गये थे।

जहां तक भट्टनारायण की जाति और पांडित्य का प्रश्न है तो उनकी जाति के विषय में भी अनिर्णय की स्थिति है। विद्वानों ने अपने-अपने कुलाबे भिड़ाये हैं। दो मत प्रचलित हैं - प्रथम मतानुसार वेणीसंहार की प्रस्तावना में कहे गये शब्द 'मृगराज लक्ष्मणः' में मृगराज उपाधि में सिंह अर्थात् क्षत्रिय होने का संकेत ग्रहण किया गया है। द्वितीय मत है कि भट्टनारायण के नाम में पूर्व पद भट्ट को जाति सूचक मानकर उन्हें भट्ट ब्राह्मण बताया गया है। ब्राह्मण ठहराने के लिए कुछ और भी उदाहरण पेश किये गये हैं। वेणीसंहार नाटक में विदूषक की अनुपस्थिति, अश्वत्थामा के प्रति सहानुभूति तथा तृतीय अंक में राक्षस-राक्षसी के संवाद में 'ब्राह्मणोचित न खल्वेतद। गलं दहद्दहत्प्रविशति 'संदर्भ के मार्फत कवि ने ब्राह्मण जाति की श्रेष्ठता रेखांकित किया है। इस आधार पर भट्टनारायण का ब्राह्मण होना सिद्ध होता है। भट्टनारायण की जाति सम्वन्धी तथ्यों में से विद्वानों ने प्रायः 'क्षितीशवंशावलीचरित' को विशेष महत्त्व देते हुए भट्टनारायण का ब्राह्मण होना मान्य किया है ।

भट्टनारायण का समय भी पुष्ट प्रमाणों के अभाव में संदेह के घेरे में है। अन्तर्साक्ष्य के अभाव में साहित्यकारों और इतिहास लेखकों ने उपलब्ध बहिर्साक्ष्य के सहारे ही भट्टनारायण के काल का निर्धारण करने का प्रयास किया है। ध्यातव्य है कि गौड़राजा आदिसूर के समय को ध्यान में रखकर ही विद्वानों ने भट्टनारायण का समय निश्चित किया है। आदिसूर का समय कतिपय इतिहासकार 650 ईसवीं के लगभग मानते हैं। किंतु, अधिकांश विद्वानों का अभिमत है कि आदिसूर का समय आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इस प्रसंग में यह ऐतिहासिक संदर्भ भी

उल्लेख्य है कि आदिसूर पालवंशी राजाओं से पूर्व गौड़ देश में राज करने वाले राजवंश के आदिपुरुष थे। 715 ईसवी में आदिसूर का राज्यारोहण हुआ था। डॉ. स्टेनकोनो के मतानुसार आदिसूर मगध के अंतिम गुप्तवंशी नरेश माधव गुप्त के पुत्र थे, जिन्होंने कान्यकुब्ज नरेश हर्षवर्धन की अधीनता से स्वतंत्र होकर आदिसूर आदित्य सेन के नाम से 671 ईसवीं तक राज्य किया था। शोधकर्ता विद्वानों ने स्टेनकोनो के इस अभिमत से सर्वथा अपनी असहमति जाहिर की है; क्योंकि उनके मत में ऐतिहासिक तथ्य का नितांत अभाव है। भट्टनारायण के जीवनकाल के सम्वन्ध में अभी तक अनुमान और कल्पना का ही सहारा लिया गया है।

एक संकेत और हमें आचार्य वामन और आचार्य आनंदवर्धन के ग्रंथों में उपलब्ध वेणीसंहार के उन उद्धरणों से प्राप्त होता है जिसके अनुसार भट्टनारायण वामन और आनंदवर्धन के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। वामनाचार्य का समय वेल्वलकर ने सातवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना है। वामन का समय लगभग आठवीं शताब्दी माना जाता है। उनके 'काव्यालंकारसूत्र' ग्रंथ में वेणीसंहार का 'पतितं वेत्स्यसिक्षितौ, वाक्य उद्धृत है। इसमें' वेत्स्यसि 'शब्द को व्याकरणिक दृष्टि से वामन सही मानते हैं। लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से यह त्रुटिपूर्ण है। पदभंग यानी वेत्सि. असि करने पर शुद्ध प्रयोग है। खैर, भट्टनारायण आचार्य वामन के पूर्व के नाटककार हैं। आचार्य मम्मट जो 1100 ई. में विद्यमान थे। उन्होंने अपने ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में, 'अमरकोश' के प्रसिद्ध टीकाकार क्षीरस्वामी ने अपनी टीका में 10वीं शताब्दी के उत्तर भाग में मौजूद धनंजय ने अपनी रचना 'दशरूपक' में, 1070 ई. में विद्यमान भोजराज ने अपने 'सरस्वती कण्ठाभरण' में, नवम् शताब्दी में विद्यमान आनन्दवर्धन ने 'ध्वन्यालोक' में वेणीसंहार के अनेक उद्धरणों/श्लोकों का उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया है।

भट्टनारायण को महाकवि बाण का समकालीन मान लेने के सम्वन्ध में भी कुछ तथ्य हमें मिलते हैं। जैसे 'रूपावतार' की एक टीका की हस्तलिखित प्रति में प्राप्त लेख में कहा गया है कि बाण की प्रार्थना भट्टनारायण और धर्मकीर्ति दोनों ने मिलकर की थी। बाण का समकालीन मान लेने पर भी भट्टनारायण का समय 650 ई. से 675 ई. के मध्य होना ज्ञात होता है। किंतु इस बात की पुष्टि महाकवि बाण के 'हर्षचरित' में कहीं भी नहीं होती है। गौरतलब है कि बाण महाराज हर्षवर्धन के सभापंडित पद पर सुशोभित थे। हर्षवर्धन का समय ऐतिहासिक साक्ष्य

के अनुसार सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना गया है। यदि भट्टनारायण का समय महाकवि बाण के समय के पश्चात् भी है तो उनका समय 650 ई. सही कहलायेगा। इन सारे तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि भट्टनारायण का समय सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध ही माना जाना चाहिए।

भट्टनारायण के वंशज कौन थे ? उनका परिवार और सामाजिक जीवन कैसा था ? यह सब कुछ अज्ञात है। वेणीसंहार की प्रस्तावना में 'हरिचरणयो-रंजलिरयम्' एवं धूर्जटिः पातु आयुष्मान्' लिखा मिलता है जिससे उनके शिव उपासक होने के साथ ही वैष्णव होना भी प्रतीत होता है। वे लोक और परलोक के प्रति विश्वासशील थे। भाग्यवादी होते हुए इसी पुरुषार्थ में विश्वास करना उनके स्वभाव में था। भट्टनारायण की कीर्ति का आधार उनकी एकमात्र नाट्य कृति 'वेणीसंहार' ही है। इसमें उनके पाण्डित्य का ज्ञान होता है। वे सांख्य, योग और वेदान्त के मंतव्यों से भलीभांति परिचित थे। इतिहास, पुराण तथा भागवत आदि शास्त्रों का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। उनका अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र सम्बन्धित ज्ञान का परिचय वेणीसंहार के छठे अंक में परिलक्षित हुआ है।

'महाभारत' के भी वे परमज्ञाता थे। 'वेणीसंहार' नाटक की कथा महाभारत की कथा पर आधारित है जिसे उन्होंने अपनी दृष्टि, अपने समय और समाज के अनुरूप विकसित किया और उसे नाटकीय प्रदर्शन के उपयुक्त बनाया है। वैदिक यज्ञ - यागादि के प्रकाण्ड पंडित के रूप में उनकी विशेष ख्याति थी। 'वेणीसंहार' में उनके छंदशास्त्र एवं अलंकारशास्त्र विषयक प्रातिभ ज्ञान का रोचक परिचय मिलता है। वेणीसंहार में सुभाषितों का भी अक्षय कोश है। सच कहूं तो भट्टनारायण के समग्र पांडित्य को 'वेणीसंहार' नाटक के आधार पर समझा जा सकता है। भट्टनारायण प्राकृत और संस्कृत भाषा के ज्ञाता थे। 'वेणीसंहार' में प्रयुक्त संस्कृत और प्राकृत विशिष्ट लक्षण से युक्त नहीं है। इसमें प्रयुक्त प्राकृत प्रायः शौरसेनी है। तृतीय अंक के आरंभ में राक्षस तथा राक्षसी की उक्तियां मागधी में हैं । त्रिमता, शब्दाडंबर और विचित्र पदावली से संयुक्त इस नाटक की भाषा कहीं कहीं असहज प्रतीत होती है।

वेणीसंहार : कथानक- नवीनता और अन्य संदर्भ

इस नाटक की कथावस्तु महाभारत की उस सुप्रसिद्ध कथा पर केंद्रित है, जिसमें कौरवों की सभा में पांडवों एवं द्रौपदी का अपमान, द्रौपदी का चीरहरण,

दुःशासन द्वारा उसके केशों का खींचा जाना, बदला लेने की भावना से द्रौपदी का अपनी खुली वेणी बांधने का संकल्प, दुर्योधन का वध करके उसके रक्त से द्रौपदी की वेणी संवारने की भीमसेन की प्रतिज्ञा और उस प्रतिशोध की पूर्णता आदि घटनाएं संयोजित की गई हैं। ये सभी घटना प्रसंग नाटक के पांच अंकों में समाहित हैं। नाटक के कलेवर में महाभारत की लगभग पूरी कथा का समावेश नाटक के रूपबंध के सौष्ठव को न्यून कर देता है। फिर भी, इस नाटक में रमणीयता का तत्त्व विद्यमान है।

हर युग में महाभारत कथा हो रामकथा अथवा अन्य मिथकीय कथा या चरित्र हों लेखक अपनी दृष्टि और समय-समाज के संदर्भ में नवीन व्याख्या के साथ प्रस्तुत करता है। रचनाकार उपजीव्य कथा में नूतनता का समावेश कर प्राचीन कथा और चरित्र को अपनी सृजनात्मक कल्पना शक्ति, चिंतन और नवीन संदर्भ में उसे रूप और रंग देता है। वेणीसंहार नाटक में दुर्योधन, भीम और द्रौपदी को लक्ष्य करके घटनाएं चित्रित हैं। दुःख, पराभव और मृत्यु का वर्णन होने से नाट्य परिणति दुःखान्तकी में बदल गई है। नायकत्व की दृष्टि से अधिकांश विद्वानों ने व्यक्तित्व की प्रभावशीलता और आकर्षण के नाते भीमसेन को ही स्वीकार किया है। क्योंकि नाटक की केंद्रीय चिंता भीमसेन की प्रतिज्ञा से जुड़ी हुई है। नाट्यशास्त्र की कसौटी पर भी इस नाटक की सफलता को कतिपय विद्वानों ने स्वीकार कर कथा की वर्णानात्मक पद्धति और काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का अनुपालन किया है।

इस नाटक में नाट्य लेखक की कल्पना प्रसूत कुछ घटनाएं महाभारत की लोक प्रचलित कथा से थोड़ा - सा भिन्न हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

1. महाभारत में संजय द्वारा पांडवों को पांच गांव देकर संधि किए जाने का प्रस्ताव विफल होने पर श्रीकृष्ण द्वारा प्रस्ताव किया गया है। जबकि नाटक में सिर्फ श्रीकृष्ण ही संधि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के सम्मुख उपस्थित होते हैं। दुर्योधन उन्हें पकड़वाने के षड्यंत्र में असफल होता है। धृतराष्ट्र ऐसा करने से दुर्योधन को रोक देते हैं।
2. महाभारत कथा में द्रोणाचार्य और कर्ण के बीच कलह होने का प्रसंग है, किंतु नाटक के तृतीय अंक में द्रोणाचार्य की मृत्यु के उपरांत कर्ण उनकी निंदा करता है जिससे अश्वत्थामा का अप्रसन्न होना स्वाभाविक है और दोनों के बीच कलह पैदा होती है।

3. इस नाटक में चार्वाक राक्षस मुनिवेश धारण कर हस्तिनापुर में युधिष्ठिर के प्रवेश करने के पूर्व भेंट करता है लेकिन महाभारत में उनके प्रवेश करने पर।
4. महाभारत कथा में सरोवर में छिपे दुर्योधन से युद्ध करने के लिए पाण्डवों में से किसी एक के लड़ने का प्रसंग वर्णित है जबकि नाटक में दुर्योधन से युद्ध केवल भीम लड़ते हैं।
5. महाभारत कथा में भीम द्वारा दुर्योधन की जांघों को तोड़ने की प्रतिज्ञा की गई है और दुशासन के रक्त से द्रौपदी के बाल संवारने का प्रसंग आया है जबकि इस नाटक में दुर्योधन के रक्त से द्रौपदी के बाल संवारने का प्रसंग वर्णित है।
6. दुर्योधन की पत्नी भानुमती द्वारा द्रौपदी का केश बांधने के सम्बन्ध में प्रश्न किए जाने का प्रसंग नाटककार की सर्वथा नवीन कल्पना है।

इस नाटक की कतिपय महत्त्वपूर्ण विशेषताएं भी हैं। जो इस प्रकार हैं -- 'वेणीसंहार' गुण-दोषयुक्त नाट्य रचना है। इसमें कलात्मकता के साथ शास्त्रीयता का गुण विद्यमान है, किंतु इसमें नाटकीय तत्त्व की अल्पता है। डॉ कीथ का अभिमत है कि ''कुल मिलाकर यह नाटक अनाटकीय है।'' इस नाटक की गद्यभाषा प्राकृत एवं संस्कृत है। वह दीर्घसमासबहुला है और वैसा ही बोझिल अनुप्रास भी, जो नाटक का दुर्बल पक्ष है। उदाहरणार्थ जब द्रौपदी भीम को युद्ध में सावधान रहने के लिए सचेत करती है तब नाटककार ने युद्ध का वर्णन किया है।

अन्योन्यस्फाल भिन्न द्विपरुधिरवसा मांसममस्तिष्कपङ्केध्मग्नानांस्यन्द-नानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ।

स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबंधे

सङ्ग्रामैकार्णवान्तरूपयसि विचरितुं पण्डितारू पाण्डु पुत्र।।[1] (1/27)

नाटक में किए गए ऐसे कथा परिवर्तन साधारण होने के बावजूद उस पर आक्षेप / प्रश्नांकन की गुंजाइश बनी रहती है। किंतु, एक रचनाकार मिथकीय कथा में इस तरह के परिवर्तन की छूट लेने में संकोच नहीं करता है। यही उसकी स्वतंत्र सृजन चेतना और मौलिकता भी है। वर्णनात्मकता के कारणों और कार्यव्यापार की अवरुद्धता नाटक की एक बड़ी दुर्बलता मानी गई है। इसी तरह अनावश्यक विवरणों की बहुलता के चलते नाटक की रोचकता प्रभावित हुई है। यद्यपि रंगमंचीय दृष्टि से नाटक को पर्याप्त सराहना नहीं मिली है।

घनघोर अशांति, मिथ्या दोषारोपण, प्रतिशोध और भीषण युद्धमय वातावरण में प्रेम, करुणा और सद्भाव के अंकुर मुरझा गए हैं। जघन्य अहंकार, ईर्ष्या, क्रोध आदि की पराकाष्ठा में समस्त उदात्त व मानवीय भावनाएं तिरोहित हो जाती हैं। इसके बावजूद युधिष्ठिर के मन में प्रजा हित का भाव उमंगता है। बंधु प्रेम और शिष्यों के प्रति अपार स्नेह की अपेक्षा महसूस की गई है। अमंगल को गंगा आदि नदियों के जल से दूर करने का विचार, महिमाशाली ब्राह्मणों के आशीर्वाद से और आहुति डालते गये जाज्वल्यमान अग्नि के द्वारा अमंगल के विनष्ट हो जाने का भाव महत्त्वपूर्ण है। संतुष्ट ब्राह्मणों की वेदध्वनि के द्वारा अपशकुन को शांत कराने की बात विचारणीय है। तेजस्वी पांडवों में अर्जुन और भीम की प्रतिज्ञाओं की पूर्णता भी रेखांकित किया जाना चाहिए। पुत्रों को पितरों का दोनों लोकों में अनुसरण करना चाहिए। अश्वत्थामा को समझाते हुए द्रोणाचार्य कहते हैं कि ''तिलांजलि का समर्पण गृहदान और श्राद्ध कर्मों से उनका कल्याण करने में तुम जीवित रहने पर समर्थ होते हो अथवा तुम जीवित रहने पर समर्थ रहे सकते हो अथवा प्राण परित्याग करने पर।''

निवापांजलिदानेन केतनैरू श्राद्धकर्मभिरू ।
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्त किंमुतान्यथा।[2] **(तृतीय अंक /18)**

दुर्योधन की रानी भानुमती के अशुभ स्वप्न - एक नेवले द्वारा सौ सर्पों का वध और चोली का अपहरण की कल्पना कर नाटककार ने भावी अनिष्ट का सूचक मानकर पाण्डवों के हाथों कौरवों के वध का संकेत किया है। यह रचनाकार की मौलिक उद्भावना है।

एक कुशल नाटककार की तरह भट्टनारायण यदि इस नाटक में पेश हुए होते तो निश्चय ही नाटक का ऐसा समापन न किया होता, उन्हें तो 'वेणीसंहार' में द्रौपदी की वेणी के संहार के साथ नाटक का समापन करना चाहिए था। किंतु ऐसा संभव नहीं हुआ है। क्योंकि नाटककार ने अपने कवित्व प्रदर्शन हेतु इस तत्त्व की अवहेलना की है। इसी संदर्भ में श्री आई. शेखर का कहना है कि ''यदि भट्टनारायण परिस्थितियों एवं घटनाक्रम की प्रभावोत्पादकता पर अधिक ध्यान देते हुए नाट्यशास्त्रीय झमेलों में कम पड़े होते, तो उनका वेणीसंहार अधिक भावप्रवण तथा प्रभावोत्पादक नाटक सिद्ध होता।''

नाटक के छठें अंक में चार्वाक राक्षस की अवतारणा की गई है जो दुर्योधन की मृत्यु की घटना पर यह मिथ्या कथन करता है कि भीम और अर्जुन की मृत्यु हो गई है। यह सुनकर द्वौपदी और युधिष्ठिर प्राण त्याग देने का संकल्प करते हैं। दोनों मरने के लिए तैयार हो जाते हैं और उसी पल कोई शब्द सुनाई देता है, जिसे दुर्योधन समझकर युधिष्ठिर शस्त्र उठाने के लिए सजग हो जाते हैं। इसी बीच द्वौपदी भागती है और भीम उसका केश और युधिष्ठिर धड़ पकड़ लेते हैं। बाद में इस हास्यास्पद भूल का पता चलता है। द्वौपदी अपनी वेणी का संहार करती है। वहां अर्जुन और कृष्ण का आगमन होता है। नकुल द्वारा चार्वाक का वध कर दिया जाता है।

नाटक के समापन में भट्टनारायण ने युद्ध समाप्त होने पर लोकमंगल की कामना करते हुए कहा है कि राजा लोग पृथ्वी का पालन करें। मेघमाला संसार में वर्षा करें। धरती धनधान्य से परिपूर्ण हो। मुर तथा नरकासुर नामक दैत्यों के शत्रु श्रीकृष्ण में मेरी अनन्य भक्ति हो। और देवता चिरकाल तक इस्य-द्रव्य का भोग करें।

अवनिमवनिपालारू पान्तु सृष्टिं विधत्तां
जाति जलधराली शस्यपूर्णास्तु भूमिरू
त्वरित मुरनरकारौ भक्ति रद्वैतयोगा-
द्भवतु ममसुदीर्घहव्यमश्नन्त देवारू।।[3]

वस्तुतः 'वेणीसंहार' नाटक में जिन विविध प्रसंगों की अवतारणा हुई है वे भट्टनारायण की अपनी समझ और नाट्य महत्ता के परिचायक हैं। अपनी कतिपय दुर्बलताओं और नाट्यशास्त्रीय त्रुटियों के बावजूद भी यह नाट्य कृति संस्कृत नाट्य साहित्य में अपनी पहचान बनाये हुए है। भट्टनारायण अपनी इकलौती नाट्य कृति 'वेणीसंहार' के लिए चिरकाल तक जीवित है।

संदर्भ -

1. *वेणीसंहार, 1/27*
2. *वही, 3/18*
3. *वही, 6/47*

2

प्रबन्ध में द्विविध अंगीरस और बहुनायकत्व की अवधारणा तथा वेणीसंहार

राधावल्लभ त्रिपाठी

नाट्यप्रदीप[1] नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ के प्रणेता आचार्य सुन्दर मिश्र का मत है कि नाटक में एक के स्थान पर दो अंगी रस हो सकते हैं। अपने ग्रन्थ में उन्होंने इस सिद्धान्त को स्वोपज्ञ अभिराममणि नामक नाटक के प्रचुर उद्धरणों तथा इस नाटक के इतिवृत्त के विश्लेषण के द्वारा सत्यापित भी किया है।

सुंदर मिश्र ने अभिराममणि नाटक की रचना 1599 ई. में की। यह नाटक मूलरूप में लुप्त हो चुका है। सुंदर मिश्र नाट्यशास्त्र के आचार्यों में भी परिगणनीय हैं। उन्होंने नाट्य प्रदीप की रचना अभिराममणि के पश्चात् 1613 ई. में की थी[2] तथा अपने नाटक से अनेक लक्षणों के उदाहरण उन्होंने इस ग्रंथ में दिये हैं, जिससे इस विलुप्त नाटक की रुपरेखा तथा वैशिष्ट्य की जानकारी प्राप्त होती है। राघवभट्ट ने अपनी अर्थद्योतनिकाटी का में नान्दी के विषय में सुंदरमिश्र का मत उद्धृत किया है। इससे प्रतीत होता है कि नाट्यशास्त्र के आचार्य के रूप में अपने जीवनकाल में ही सुंदर मिश्र ने बड़ी ख्याति पा ली थी। सुंदर मिश्र ने यह सोदाहरण प्रदर्शित किया है कि किस प्रकार उनके नाटक में पाँचों संधियाँ तथा अधिकांश संध्यंग, अर्थ प्रकृतियाँ, पंच अवस्थाएँ, छत्तीस काव्यलक्षण, विभिन्न प्रकार के पताकास्थानक तथा अनुसंधियों का यथास्थान विनिवेश हुआ है।

नाट्य प्रदीप में प्राप्त इस नाटक के उल्लेखों से विदित होता है कि राम के द्वारा रावण पर विजय के प्रख्यात इतिवृत्त पर आधारित होने पर भी इसमें केवल वीर रस ही अंगी नहीं है। आचार्य के रूप में सुंदर मिश्र की मान्यता है कि किसी

नाटक में दो रस एक साथ समान रूप से अंगी रह सकते हैं, और यह उन्होंने अपने अभिराममणि के कथानक की प्रस्तुति और उसके निर्वाह का विशद विश्लेषण करते हुए सिद्ध भी किया है। तदनुसार इस नाटक में वीर रस की प्रधानता दृष्टि से भी पञ्चसंधि, पञ्चावस्था, अर्थ प्रकृतियों, अर्थोपक्षेपकों और संध्यङ्गों तथा अनुसन्धियों का विन्यास है, तथा शृंगार रस की दृष्टि से पृथक् रूप में पञ्च संधि, पञ्चावस्था, अर्थ प्रकृतियों, अर्थोपक्षेपकों और संध्यङ्गों तथा अनुसंधियों का विन्यास किया गया है। राम और सीता के प्रणय तथा परस्पर अनुराग की कथा को नाटककार ने उतना ही गौरव दिया है, जितना रामकी शौर्यगाथा व उनकी रावण विजय को। यद्यपि सुंदरमिश्र इस नाटक में प्रधान फल राम के सीता से पुनर्मिलन को ही मानते हैं[3], और रावणविजय तथा अयोध्या में पुनः राज्याभिषेक उसके अनुबंध मात्र हैं, पर वे वीररस को यहाँ अंग नहीं मानते।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में यह आग्रह नहीं किया कि नाटक में शृंगार या वीर में से कोई एक रस ही अंगी होना चाहिये। परवर्ती आचार्यों में धनंजय आदि ने ''एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा'' - की बात कही है। भवभूति ने उनके मत को अपास्त कर के उत्तररामचरित में करुणरस की अमन्द स्रोतस्विनी अनिर्बाध प्राधान्य के साथ बहाई है। सुन्दर मिश्र ने भी एक रस के ही अंगी होने के सिद्धान्त को अमान्य करते हुए अपने शास्त्रग्रन्थ तथा अपने नाटक में दो रसों के अंगी हो सकने की सम्भावना को उचित ठहराया है।

वेणीसंहार में द्विविध अंगीरस

सुन्दर मिश्र का द्विविध अंगीरस का सिद्धान्त वेणीसंहार नाटक पर लागू किया जा सकता है। वेणीसंहार में महाभारत युद्ध का वृत्तान्त है। इसका अंगी रस वीर है यह माना जाता है, पर इसके द्वितीय अंक दुर्योधन और भानुमती के प्रणय के वृत्तान्त में शृंगार रस या शृंगाराभास तथा अन्तिम अंक में युधिष्ठिर, द्रौपदी आदि के करुण विलाप का प्रसंग होने से वीर रस का आद्यन्त निर्वाह नहीं हुआ है। प्रथम अंक में भीम के संवादों में अत्यधिक क्रोध की अभिव्यक्ति, तृतीय अंक में अश्वत्थामा और कर्ण के अत्यन्त कटु और उग्र विवाद में रोष, परस्पर आधर्षण आदि के द्वारा वीर रस के स्थान पर रौद्र रस की प्रमुखता, पंचम अंक में भी भीम के दुर्योधन के प्रति साक्षात् प्रकट भीषण रोष तथा दोनों के विवाद में पुनः क्रोध स्थायी

भाव के बाहुल्य को देखते हुए कहा जा सकता है कि इस नाटक में वीर रस के साथ-साथ रौद्र रस को समान रूप से स्फीत अभिव्यक्ति मिली है।

अन्य रसों के अंग रूप में समावेश के साथ वेणीसंहार में वीर और रौद्र इन दोनों की समान रूप से प्रचुरता है। दूसरे अंक में शृंगार रस का वितान नाटककार ने रचा है, अन्तिम अंक में करुण के साथ शान्त का। भीम, अश्वत्थामा, कर्ण आदि पात्रों के संवादों में गौड़ी रीति, गाढ बंध तथा ओजोगुण के प्रयोग के द्वारा वीर व रौद्र रसों का प्रवाह अक्षुण्ण रखा गया है। पहले अंक में भीम की प्रतिज्ञा नाटक का बीज उपन्यस्त करती है-

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः।।

(हे देवि द्रौपदि! अपने चंचल भुजदंडों से घुमाये हुई गदा के भीषण प्रहार से दुर्योधन की जंघाओं को चूर-चूर करके उसके गाढ़े रक्त से सने हाथों से यह भीमसेन तुम्हारे केशों को सँवारेगा।)

इस प्रकार इस नाटक में पहले पाँच अंकों में वीररस के साथ-साथ रौद्र रस भी प्रधान हो गया है और षष्ठ अंक में करुण प्रधान है। अंत में श्रीकृष्ण के अवतरण के साथ नाटक का पर्यवसान शांत रस में होता है।

नाटक में सर्वत्र भीम का सर्वातिशायी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। नाटक का आरंभ ही भीम के प्रवेश के साथ होता है। पहले व दूसरे अंकों में वह छाया हुआ है। तीसरे और चौथे अंकों में वह सामने नहीं है, फिर भी उसकी उपस्थिति का बोध निरंतर बना रहता है। भीमसेन के प्रचंड औद्धत्य, शौर्य, साहस और अन्याय के प्रतिकार की उत्कट अभिलाषा का चित्रण सजीव है।

मम्मट ने वेणीसंहार में भीम के रोषावेग की व्याप्ति उसके सहज-सामान्य कथनों में भी प्रदर्शित करते हुए यह दुन्दुभि किसने बजाई है भीम के इस प्रश्न में भी गौड़ी रीति और रौद्र रसानुरूप वर्णसङ्घटना को उचित माना है - क्वचिद्वाच्य-प्रबन्धानपेक्षया वक्तौचित्यादेव रचनादयः। यथा –

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः।

कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽसौ ।।

इस पद्य में केवल यह प्रश्न किया गया है कि यह दुंदुभि किसने बजाई? पर वक्ता भीमसेन हैं, जो सदैव रोषाविष्ट रहते हैं। उनकी प्रकृति के अनुकूल गौड़ी रीति और गाढ़ ओजस्वी बंध यहाँ कवि ने रचा है।[4]

रौद्र रस की उत्कट अभिव्यक्ति की दृष्टि से निम्नलिखित श्लोक की प्रांजल अभिव्यक्ति को आनंदवर्धन आदि काव्यशास्त्रियों ने भी सराहा है -

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ।।

(पांडवों की सेना में जिस जिस को अपनी भुजाओं का गर्व है, जिस जिस ने शस्त्र उठा रखा है, जो कोई भी उस सेना में बच्चा या बड़ा या गर्भ में भी है, जिस किसी ने इस घृणित कार्य का अपने नेत्रों से देखा है, और जो कोई युद्ध में मेरे सामने आ कर टकरायेगा, क्रोध से अंधा मैं उसका और संसार का अंत करने वाले का भी काल हूँ।)

उपरिलिखित दोनों पद्यों पर आनंदवर्धन व अभिनवगुप्त जैसे मूर्धन्य काव्यशास्त्रियों ने विचार किया है। वेणीसंहार रौद्रादिरस किस प्रकार परम दीप्ति व उदज्ज्वलता को व्यक्त करते हैं इसके उदाहरण में आनन्दवर्धन ने वेणीसंहार से ऊपर उद्धृत पद्य चञ्चद्भुजभ्रमित.. उद्धृत किया है। इन दोनों पद्यों की व्यंजनाएँ स्पष्ट करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं - स्त्यान शब्द से सूचित होता है कि रुधिर कालांतर शुष्क नहीं है, तत्काल दुर्योधन का वध कर के उसके जाता रक्त से सने हाथों से वेणी के केश उत्तंसित करने का वचन भीम देते हैं। त्स्यान शब्द के प्रयोग से त्वरा भी ध्वनित होती है। रुधिर से केशों को उत्तंसित करने के कथन से उन को मानों लोहित पुष्प सजा दूँगा यह भाव ध्वनित होता है जिससे उत्प्रेक्षा अलंकार व्यंजित होता है। देवी शब्द का प्रयोग यहाँ क्रोध का उद्दीपक ही है, शृंगार का द्योतक नहीं। इसी प्रकार द्वितीय पद्य में भी माधुर्य कम और ओजोगुण ही अधिक है।[5]

नाटक के अंत में करुण रस का प्रभावी उद्रेक हुआ है। आद्यंत युद्ध और संघर्ष के प्रसंगों से भरपूर इस नाटक में शांत रस के लिये तो अवकाश कम ही था,

पर भट्टनारायण ने श्रीकृष्ण का परममतत्त्व के रूप में निर्वचन करते हुए एक पद्य में इस रस को भी हृदयंगम करा दिया है। यह भी उल्लेखनीय है कि यह पद्य सदैव क्रोध का घटाटोप प्रकट करते रहने वाले दुराधर्ष भीम के मुख से कहलाया गया है-

आत्मारामा विहतरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं महान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्।। (1।23)

(अपने आत्मा में विश्रांत, आसक्ति को नष्ट कर चुके, ज्ञान के उद्रेक से जिनके भीतर की तमोग्रंथियाँ नष्ट हो गईं हैं, ऐसे योगी जन निर्विकल्प समाधि में तमस् (अंधकार) तथा ज्योति के भी परे जिन परमतत्त्व रूप भगवान् को देखते हैं, उन पुराण देवता को मोह में अंधा वह कैसे पहचानेगा?)

द्विविध नायक -

कुछ नाटककारों ने द्विविध नायक के सिद्धान्त को नायक के सामने प्रतिनायक के चरित्र का उत्कर्ष चित्रित कर के भी अपने कृतित्व में चरितार्थ किया है। नायक यदि स्वगुणसम्पन्न मनुष्य है, तो उसकी परिपूर्णता की एक पहचान प्रतिनायक के सम्मुख उसे रखने पर अधिक उत्कृष्ट रूप में हो सकती है। दण्डी अपने काव्यादर्श में कहते हैं --

गुणतः प्रागुपन्यस्य नायकं तेन विद्विषाम्
निराकरणमित्येष मार्गः प्रकृतिसुन्दरः।।
वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि
तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं च धिनोति नः।। काव्यादर्श, 1.21-22।।

अर्थात् नायक का उत्कर्ष भी पूरी तरह तभी दिखाया जा सकेगा जब उसके सामने उसका एक प्रतिनायक हो और प्रतिनायक का पराभव उसके द्वारा दिखाया जाय।

प्रतिनायक खलनायक नहीं है। खलनायक के लिये हमारे पारम्परिक साहित्य विचार में कोई स्थान नहीं है। 'खलनायक' शब्द ही अठारहवीं शताब्दी तक हमारे काव्यशास्त्र में प्रयोग में नहीं आया। स्याह और सफेद के रूप में मनुष्य चरित्र को हमने नहीं देखा। एक व्यक्ति पूरी तरह पवित्र दूध का धुला है उसमें कहीं कोई दोष है ही नहीं, और एक पूरी तरह पापी है। इस तरह मनुष्यों को हमने दो साँचों में नहीं बाँटा।

संस्कृत भाषा में शैतान के लिये कोई शब्द नहीं है। छठी शताब्दी के बाद के साहित्य में खलनिन्दा के प्रसंग खूब मिलते हैं। यह परम्परा भी बनने लगती है कि महाकाव्य या गद्यकाव्य के आरम्भ में सुजनप्रशंसा के साथ खलनिन्दा का प्रसंग भी मंगलाचरण की तरह रखा जायेगा। फिर भी आचार्य परम्परा का ऐसा अंकुश रहा कि खल का नायकीकरण नहीं हुआ, खलनायक के होने की सम्भाव्यता नहीं बनी। नाटकों, महाकाव्यों और कविताओं में खलनायक नहीं है, प्रतिनायक अवश्य है।

कभी कभी प्रतिनायक अपनी कुछ खूबियों में नायक को भी मात देता लगने लगता है। वाल्मीकि रामायण में राम रावण की प्रशंसा करते हैं। स्वयं वाल्मीकि उसे महापराक्रमी के साथ परम शिवभक्त और महाज्ञानी तथा नीतिज्ञ के रूप में चित्रित करते हैं। भर्तृमेण्ठ संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ महाकवियों में एक माने जाते हैं। उनके महाकाव्य हयग्रीववध पर आचार्यों ने यह आक्षेप ही किया था कि उसमें प्रतिनायक का चरित्र अधिक विस्तृत और गरिमामय बना दिया गया है। कभी-कभी प्रतिनायक नायक का विलोम हो जाता है। मोहन राकेश आषाढ़ का एक दिन में कालिदास का विलोम प्रतिनायक के रूप में खड़ा करते हैं।

विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य नायक है, राक्षस प्रतिनायक। कई प्रसंगों में यह सन्देह होने लगता है कि चाणक्य को उसके अपने संकल्प, दृढ़ता, कूटनीति कुशलता के कारण बड़ा माना जाय, या राक्षस को उसकी स्वामिभक्ति, प्रेम, करुणा, स्नेह, समर्पण, त्याग के कारण ज्यादा बड़ा माना जाय। नाटक के अन्तिम अंक में राक्षस अपने मित्र चन्दनदास के प्राणों की रक्षा करने के लिये अपने प्रतिद्वन्द्वी चाणक्य के सम्मुख आत्मसमर्पण करने को तैयार हो जाता है। चाणक्य के आगे झुक कर वह बहुत ऊँचा हो जाता है। इस पूरे दृश्य में चाणक्य तो स्वयं गद्गद हो कर राक्षस की चारित्रिक उदात्तता की सराहना करता है। यहाँ तो नायक और प्रतिनायक आमने सामने खड़े हैं और एक दूसरे की ऊँचाई दोनों मिल कर बढ़ा रहे हैं।

अतः द्विविध अंगीरस की अवधारणा के समान है मुद्राराक्षस जैसे नाटकों में द्विविध या त्रिविध नायक भी माने जा सकते हैं।

प्रबन्धों में एक ही नायक हो यह आवश्यक नहीं है। डिम, समलकार आदि रूपक विधाओं में एकाधिक नायक होते ही हैं।

वाल्मीकि की रामायण के बाद राम की कथा को ले कर कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य लिखा। पर रघुवंश में राम ही नायक नहीं हैं, दिलीप से लगाकर

अग्निवर्ण तक की सुदीर्घ वंश परम्परा के अनेक राजा इसमें नायक हैं। आचार्यों को महाकाव्य के लक्षण में भी इसके कारण यह संशोधन करना पड़ा कि एक वंश के कई कुलीन राजा किसी महाकाव्य में नायक हो सकते हैं। एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा (साहित्यदर्पण)। दण्डी के दशकुमारचरित में दस राजकुमार नायक हैं। कभी-कभी व्यक्ति नायक नहीं, पूरा समाज नायक हो जाता है। इस दृष्टि से महाकाव्य या नाटक आदि में नायक की तीन स्थितियाँ हो सकती हैं --

(1) केवल एक ही नायक हो,

(2) कई नायक हों, कोई एक पूर्णतः प्रधान न हो,

(3) कई नायक हों, उनमें से कोई एक प्रधान हो,

(4) कोई नायक न हो समाज या समूह ही नायक हो

यदि काव्य या नाटक की कहानी को आगे बढ़ाने वाले सारे ही पात्र नायक हैं, तो हो सकता है कि उनमें प्रधानता और अप्रधान का निर्णय करना कठिन हो जाये। भरत मुनि ने तो नाट्यशास्त्र में रूपक के दस भेदों (दशरूपकों) में कुछ रूपक ऐसे बताये हैं, जिनमें कोई एक प्रधान नायक नहीं होता, कई नायक रहते हैं। डिम एक रूपक है, उसमें सोलह नायक रहते हैं। समवकार में बारह। इन रूपक प्रकारों में से नाटक नामक रूपक भेद में प्रायः एक ही नायक रहता है।

नाटक में भी अनेक नायक हो सकते हैं, एक अंक में उनमें से कोई एक नायक प्रधान रहे, यह हो सकता है। भट्टनारायण का वेणीसंहार इस बहुनायकत्व का भी उदाहरण है। वेणीसंहार के पहले अङ्क में भीम, दूसरे में दुर्योधन, तीसरे में अश्वत्थामा, चौथे में धृतराष्ट्र तथा पाँचवें में युधिष्ठिर नायक हैं।

इस तरह बहुपात्रीय साहित्यिक कृतियों को नायक की दृष्टि से दो कोटियों में रखा जा सकता है एकनायकीय तथा बहुनायकीय। रामायण और महाभारत भारतीय साहित्य के दो आद्य काव्य हैं। राजशेखर ने कुछ आचार्यों के मत से पुराण का ही एक प्रविभेद इतिहास बताते हुए इतिहास के दो पक्ष माने -- परक्रिया तथा पुराकल्प। परक्रिया एक नायक वाली होती है तथा पुराकल्प बहुनायक। पहले का उदाहरण (वाल्मीकिकृत) रामायण है और दूसरे का महाभारत (काव्यमीमांसा, द्वितीय अ.)।

वेणीसंहार में छह अंक हैं। यह महाभारत पर आधारित है। नाटक का बीज है भीम के द्वारा दुःशासन के रक्त से से सने हाथों से द्रौपदी के केश सँवारने की

प्रतिज्ञा। इस प्रतिज्ञा की पूर्ति के साथ नाटक समाप्त होता है। पहले अंक से अंतिम अंक तक प्रत्येक अंक में युद्ध से जुड़े अलग-अलग प्रसंग हैं, जो परस्पर विच्छिन्न प्रतीत होते हैं। पर उनमें अंतर्निहित एकसूत्रता है, जिसमें हम भीमसेन को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की दिशा में अग्रसर देखते हैं।

यद्यपि इस नाटक में सर्वातिशायी चरित्र भीम का है, और उनके सभी संवादों में धीरोद्धत नायक के क्रोध तथा रौद्र रस का प्रकर्ष है, पर नाटक का फल युद्ध में विजय युधिष्ठिर को प्राप्त होती है। इस दृष्टि से युधिष्ठिर को भी अनेक विद्वानों ने इस नाटक का नायक माना है। सुन्दर मिश्र के सिद्धान्त से वेणीसंहार के नायकत्व के विषय में विविध मतों का समन्वय कर के भीम और युधिष्ठिर दोनों को इस नाटक का नायक माना जा सकता है। वीर रस के चार भेद कहे गये हैं - दान वीर, दया वीर, धर्मवीर और युद्ध वीर। वस्तुतः वीर रस के प्रकर्ष के लिये युद्ध वीर का होना आवश्यक नहीं है। इस नाटक में युधिष्ठिर भी योद्धा नायक नहीं हैं, उनके चरित्र में दया वीर और धर्मवीर के गुणों की प्रधानता है।

वेणीसंहार महाभारत के संग्राम की कथा पर रचा गया रूपक है। यह संग्राम युधिष्ठिर के नायकत्व में लड़ा गया। विजयश्री की प्राप्ति युधिष्ठिर को ही होती है। इस दृष्टि से युधिष्ठिर को नायक माना जाना चाहिये।

नाट्यशास्त्र के विधान के अनुसार नायक और नायिका को नाटक के प्रत्येक अंक में उपस्थिति दिखाई जाना चाहिये। भीमसेन नाटक के प्रत्येक अंक में उपस्थित नहीं है, और युधिष्ठिर का प्रवेश तो केवल अन्तिम अंक में ही कराया गया है, इसके पहले के पाँच अंकों में नाम मात्र की उनकी चर्चा एकाधिक स्थलों पर हुई है। भीमसेन पहले अंक में तो सर्वातिशायी हैं, पर दूसरे और तीसरे अंक में वे पूरी तरह अनुपस्थित हैं।

वस्तुतः वेणीसंहार नाटक युद्ध के कथानक पर आधारित होते हुए भी युद्ध के विरोध में लिखा हुआ नाटक है। युद्ध के दारुण परिणामों के प्रदर्शन तथा अन्तिम अंक में करुण और शान्त रसों में पर्यवसान के द्वारा वह युद्धों के निवारण और शान्ति की स्थापना का ही सन्देश देता है। इस दृष्टि से नाटककार ने उसमें द्विविध अंगीर रस और द्विविध नायक का एक विशिष्ट संविधान भी परिकल्पित किया है, जो सुन्दर मिश्र जैसे शास्त्रकारों के सिद्धान्तों से भी समर्थित होता है।

संदर्भ -

1. *नाट्यप्रदीप सुन्दरमिश्र, सं. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्र.- राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन तथा डी.के. प्रिण्ट वर्ल्ड, नई दिल्ली, 2015*
2. *शाके शरग्रामशरेन्दुतुल्ये (1535) ग्रामे वरिष्ठाश्रमतः प्रसिद्धे। तदेतदौजागरिणा निबद्धं मुदा कवीनां कविसुन्दरेण। (नाट्यप्रदीप)*
3. *यथा प्रकृते सप्तमेऽङ्के विजयराज्यलाभफलान्तरानुबन्धेन सीतासमागमरूपप्रधानफलनिर्वाहः।*
4. *काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास*
5. *चञ्चद्भ्यांवेगादावर्तमानाभ्यांभुजाभ्यांभ्रमितायेयंचण्डादारुणागदातयायोऽभितः सर्वतऊर्वोर्घातस्तेनसम्यक्चूर्णितंपुनरनुत्थानोपहतंकृतमूरुयुगलंयुगपदेवोरुद्वयंयस्यतंसुयोधनमनादृत्यैवस्त्यानेनाश्यानतयानतुकालान्तरशुष्कतयावबद्धंहस्ताभ्याम-विगलद्रूपमत्यन्‍ तमाभ्यन्तरतयाघनंनतुरस मात्र स्वभावं यच्छोणितंरु धिरंतेन शोणौ लोहितौ पाणीयस्यसः। अतएवसभीमः कातरत्रासदायी। तवेति। यस्यास्तत्तदपमान जातंकृतंदेव्यनुचितमपितस्यास्तवकचानुत्तंसयिष्य त्युत्तंसवतःकरिष्यति, वेणीत्वमपहरन्करविच्युतशोणित शकलैर्लोहितकुसुमापीडेनेवयो जयिष्यतीत्युत्प्रेक्षा। देवीत्यनेनकुलकलत्रखिलीकारस्मरण कारिणाक्रोधस्यैवोद्दीपन विभावत्वंकृतमितिनात्रशृङ्गारशङ्काकर्तव्या। सुयोधनस्यचाना दरणंद्वितीयगदाघात दानाद्यनुद्यमः। सचसञ्चूर्णितोरुत्वादेव। स्त्यानग्रहणेनद्रौपदीमन्युप्रक्षालनेत्वरा सूचिता। समासेनचसन्ततवेगवहनस्वभावात्तावत्येवमध्येविश्रान्तिमलभमाना चूर्णितोरुद्वयसुयोधनानादरणपर्यन्ता प्रतीतिरेकत्वेनैव। भवतीत्यौद्धत्यस्यपरंपरि पोषिका अन्येतुसुयोधनस्यसम्बन्धियत्स्त्यानावबद्धंघनं शोणितंतेन शोणपाणिरिति व्याचक्षते। यइ त। स्वभुजयोर्गुरुर्भदोयस्य चमूनांमध्येऽर्जुनादिरित्यर्थः। पाञ्चाल राजपुत्रेण धृष्टद्युम्नेन द्रोणस्यव्यापादनात्तत्कुलं प्रत्यधिकः क्रोधावेशोऽश्वत्थाम्नः। तत्कर्म साक्षी तिकर्णप्रभृतिः। रणेसङ्ग्रामेयः प्रतीपं प्रतिकूलं कृत्वास्तेस एवं विधोयदि सकल जगदन्तको भवति तस्याप्यहमन्त कःकिमुतान्यस्यमनुष्यस्यदेवस्यवा। अत्रपृथग्भूतैरेव क्रमाद्विमृश्य मानैरर्थैः पदात्पदंक्रोधः परांधारामाश्रित इत्य समस्ततै वदीप्तिनिबन्धनम्।*

3

भट्टनारायण की दार्शनिक दृष्टि

चन्दनलाल गुप्ता

आचार्य भट्टनारायण ने वेणीसंहार नाम वाले केवल एक नाटक को लिखकर भी संस्कृत नाट्यजगत् में वह स्थान स्थापित किया है जो कई नाटक लिखने वालों को भी प्राप्त नहीं हुआ है। इसका कारण है भट्टनारायण के द्वारा नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का सम्यक् पालन करना। नाट्यकला के आचार्यों ने इसको एक आदर्श नाटक माना है। वामन, आनन्दवर्धन, धनञ्जय, मम्मट आदि काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा अपने ग्रन्थों में वेणीसंहार को उद्धृत करने के कारण संस्कृत साहित्य जगत् में इसका महत्त्व स्पष्ट है। नाटक मनोरंजन के साथ-साथ दार्शनिक विचारों, धार्मिक आचारों, सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक मूल्यों को जन-जन तक पहुँचाने के सरल तथा उत्तम साधन हैं। यह सभी के लिए मनोरंजक, हितोपदेशक और सुखकारक होते हैं, साथ ही चारित्रिक विकास के द्वारा जीवन के उच्च आदर्शों को स्थापित करने में सहायक होते हैं। वेणीसंहार नाटक का मुख्य रस वीर है, रौद्र और श्रृंगार अंगरस के रूप में आये हैं। लेकिन वैष्णव आचार्य होने के कारण नाटक में कई स्थलों पर अनेक दार्शनिक विषयों का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। इस शोध-पत्र में इन्हीं दार्शनिक विषयों का विवेचन किया गया है।

मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन को सुखमय और सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिये शास्त्रों में पुरुषार्थ चतुष्टय की उद्भावना की गई है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, काव्य, नाटक आदि सभी का परम प्रयोजन मोक्ष ही है। मोक्ष शब्द का अर्थ है- ''मुच्यते सर्वैर्दुःखबन्धनैर्यत्र सः मोक्षः'' अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख बन्धनों से मुक्ति को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष केवल पारलौकिक नहीं होता है। यह इस सांसारिक जीवन में भी प्राप्त होता है। सुखदुःखात्मक इस

संसार में सभी को कोई न कोई दुःख और समस्यायें हैं और प्रत्येक व्यक्ति इनसे छुटकारा पाना चाहता है। यही इस संसार में मुक्ति है। दुःखों से मुक्त होने के बाद व्यक्ति का सांसारिक जीवन आनन्दमय हो जाता है। जिसका यह संसार आनन्दमय हो गया, उसका परलोक भी आनन्दमय हो ही जाता है। वह मुक्तात्मा हो जाता है।

अचार्य भरत[1] ने नाट्य को उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के मनुष्यों के आचरण पर आश्रित कल्याणप्रद उपदेश देने वाला, धैर्यप्रद, मनोरंजक तथा सुखप्रद कहा है। इसके साथ ही नाट्य को दुःख से पीड़ित, श्रम से शिथिल, शोक संतप्त और तपस्वियों के लिये समय-समय पर विश्रान्ति देने वाला, धर्म को उत्पन्न करने वाला, यशप्रदायक, आयुप्रद, हितकारी, बुद्धि को बढ़ाने वाला तथा संसार को उपदेश देने वाला कहा है। समस्त ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नाटक में विद्यमान हैं।[3] इन सबका संश्लिष्ट रूप हमें नाटक की रचना से लेकर उनके प्रदर्शन तक में देखा जा सकता है। यहाँ बड़े ही स्पष्ट शब्दों में काव्य के दार्शनिक महत्त्व को स्वीकार किया गया है।

भामह[3], मम्मट[4], विश्वनाथ[5] आदि प्राचीन आचार्यों ने काव्य के श्रवण, दर्शन, पठन और लेखन से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति को स्वीकार किया है। अचार्य विश्वनाथ के मत में काव्य से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी परम पुरुषार्थ की प्राप्ति साधारण व्यक्ति को भी सरलता से हो जाती है। अग्निपुराण ने नाट्य को त्रिवर्ग की प्राप्ति का साधन कहा है।[6] आचार्यों ने काव्यों में नाटक को सर्वश्रेष्ठ कृति कहा है-काव्येषु नाटकं रम्यं...।

भट्टनारायण वैष्णव आचार्य थे, इसलिये अपने नाट्य ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की भगवत्ता तथा माहात्म्य का सुन्दर प्रतिपादन किया है। पुराणों में हरिनाम संकीर्तन की महिमा गाई गई है। हरिनाम को पापों को निःशेष[7] करने वाला और मोक्षदाई[8] कहा गया है। आचार्य भट्टनारायणंने वेणीसंहार के मंगलाचरण[9] में श्री हरि की स्तुति की है।

वेदान्त दर्शन में समाधि के दो प्रकार कहे गए हैं- सविकल्पक और निर्विकल्पक। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के भेद से युक्त 'अहं ब्रह्मास्मि' रूप अद्वैत वस्तु के आकार से आकारित चित्तवृत्ति को सविकल्पक समाधि कहा गया है तथा ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के भेद का लोप होकर केवल अद्वैत वस्तु ब्रह्म में तदाकार से

आकारित चित्तवृत्ति का अत्यन्त एकीभाव से स्थित होना निर्विकल्पक समाधि है।[10] योगदर्शन में सविकल्पक और निर्विकल्पक समाधि को ही सम्प्रज्ञात[11] एवं असम्प्रज्ञात[12] समाधि के नाम से कहा गया है।

योग और वेदान्तदर्शन के इस मत का प्रतिपादन वेणीसंहार में देखा जा सकता है। भीम के माध्यम से भट्टनारायण कहते हैं कि परब्रह्म परमात्मा में निरन्तर रमण करने वाले, निर्विकल्पक समाधि में अनुराग रखने वाले, तत्त्व ज्ञान की अधिकता से अपनी तमोगुण की ग्रन्थियों का नाश करने वाले, सात्विक योगी, मिथ्याज्ञान और तत्त्वज्ञान से परे स्थित जिस किसी को देखते हैं, उस पुराण पुरुष देव को मोहान्ध यह सुयोधन कैसे जान सकता है,[13] अर्थात् उस रूप का दर्शन तो केवल निर्विकल्पक समाधि में स्थित योगीजनों को ही होता है, सामान्य व्यक्ति को नहीं होता है। नाटक में कई स्थलों पर कृष्ण के ऐश्वर्यशाली और ब्रह्मस्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। कृष्ण के इस स्वरूप का ज्ञान कञ्चुकी, भीम और सहदेव को है। सहदेव कहते हैं कि क्या दुष्ट दुर्योधन भगवान् के स्वरूप अर्थात् ईश्वर रूप को नहीं जानता है।[14] विष्णु पुराण के अनुसार भगवत् शब्द का प्रयोग समस्त कारणों के कारण, महाविभूतिसंज्ञक परब्रह्म के लिए ही हुआ है।[15]

वेणीसंहार में एकत्र एक साथ सांख्य और वेदान्त दोनों के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए कवि कहता है कि-

तद् गुरुमहदादिक्षोभसम्भूतमूर्ति
गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम्।
अजरममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वापि न त्वां
भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा।।[16]

अर्थात् युधिष्ठिर कृष्ण से कहते हैं कि हे देव! अपने से ही उत्पन्न किये महान् महत्तत्त्वादि के क्षोभ से उत्पन्न मूर्ति वाले, सत्त्व, रज, तमोपाधियों से विशिष्ट, प्राणिजन के सृष्टि, स्थिति, नाश के हेतु, जन्मरहित, मृत्युरहित, अचिन्तनीय आपके स्मरण मात्र से व्यक्ति दुःखी नहीं रह सकता है, फिर आपका दर्शन करके तो दुःखी होने की बात ही क्या है? नाटक के प्रथम अंक में भी सूत्रधार के मुख से कृष्ण को सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने में समर्थ बताया गया है-

सकलजगत्प्रभवस्थितिनिरोधप्रभविष्णुना विष्णुनाऽद्यानुगृहीतमिदम् ..।[17]

यहाँ पर कवि ने एक साथ सांख्य और वेदान्त दोनों के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। सांख्यकारिका में त्रिगुणों के लक्षण, प्रयोजन और स्वभाव को बताया गया है। सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीन गुण क्रमशः सुख, दुःख और मोह स्वभाव वाले होते हैं। क्रमशः प्रकाशन, प्रवर्तन और नियमन या नियन्त्रण रूप प्रयोजन वाले होते हैं। ये परस्पर दबाने, आश्रय बनने, उत्पन्न करने वाले तथा मिलकर कार्य करने के स्वभाव वाले होते हैं।[18] आत्मा के अजरत्व, अमरत्व का प्रतिपादन कठोपनिषद्[19], गीता[20], बृहदारण्यकोपनिषद् आदि में किया गया है।

भट्टनारायण ने महर्षि वेदव्यास को सात्त्विक गुण वाला कहा है। मैं राग अर्थात् रजोगुण और तमोगुण रहित उन वेदव्यास की वन्दना करता हूँ-

तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे।[21]

गीता में रजोगुण को रागात्मक कहा गया है। कृष्ण कहते हैं कि हे कुन्तीनन्दन रजोगुण को रागस्वरूप समझो, जिससे तृष्णा और आसक्ति उत्पन्न होती है।[22]

सांख्यदर्शन के अनुसार चैतन्य और प्रकाश रूप पुरुष का 'प्रकाश' जब जड़ात्मिका प्रकृति पर पड़ता है तब त्रिगुणों की साम्यावस्था में क्षोभ होने से वैषम्य के कारण सृष्टि होती है। त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति से ही महदादि तेईस पदार्थों की उत्पत्ति होती है।[23]

कृष्ण को जीवों के सृष्टि, स्थिति और नाश का हेतु कहा गया है। तैत्तिरीयोपनिषद्[24] में कहा गया है कि जिसके द्वारा समस्त प्राणी उत्पन्न किये जाते हैं, उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं और अन्त में जिसमें सभी विलीन हो जाते हैं, उस एक को ही जानने की इच्छा करनी चाहिए, वह ब्रह्म है।

दुर्योधन साधारण मनुष्य है, इसके साथ ही वह अभिमानी और दुर्गुणों से युक्त है। इसीलिए कृष्ण के जिस रूप का साक्षात्कार युधिष्ठिर को होता है। वह दुर्योधन आदि को नहीं हो सकता है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि जिस आत्मा को बहुत से मनुष्य सुनते हुए भी नहीं समझ पाते हैं, इसके विषय में व्याख्या करने वाला आश्चर्य से मिलता है और प्राप्त करने वाला निपुण व्यक्ति भी आश्चर्य से मिलता है।[25] इसी प्रकार की बात मुण्डकोपनिषद्[26] में भी कही गई है। केनोपनिषद्[27] के तृतीय खण्ड में भी आया है कि अभिमान से युक्त होने पर अग्नि, वायु और इन्द्र

भी दिव्य साकार यक्ष के रूप में उपस्थित उस परब्रह्म को नहीं जान पाये कि वह यक्ष कौन है?

भट्टनारायण के द्वारा प्रतिपादित कृष्ण के जिस रूप का दर्शन कर व्यक्ति के दुःखों का नाश हो जाता है, उसका वर्णन करते हुए कठोपनिषद् कहता है कि धीर व्यक्ति कठिनाई से देखने योग्य, गहन, छिपे हुए, बुद्धिरूपी गुफा में रहने वाले, गहराई में स्थित सनातन आत्मा को अध्यात्म योग से जानकर हर्ष और शोक को छोड़ देता है।[28] आत्मज्ञानी व्यक्ति शोक से मुक्त हो जाता है।[29]

श्रीमद्भागवत पुराण में कहा गया है कि जिसने भी जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है, चाहे वह आज हो या सौ वर्ष के बाद। प्राणी के जन्म के साथ मृत्यु भी उत्पन्न होती है।[30] नाटक में इस जागतिक सत्य को व्यक्त करते हुए अश्वत्थामा समरभूमि से भागते हुए नरपतियों से कहता है कि यदि रण छोड़ देने से मृत्यु का भय न होता तो यहाँ से भागना ठीक है, लेकिन यदि प्राणी की मृत्यु निश्चित है, तब अपने यश को कलंकित क्यों करते हो?[31]

योगसूत्र में आचार्य पतंजलि ईश्वर की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जो पुरुष विशेष अविद्यादि पंचक्लेशों, शुभ-अशुभ मिश्रित कर्मों, उन कर्मों के फलों और भोगों के संस्कार से रहित है, वह ईश्वर कहलाता है। इन विकारों से युक्त को ही जीव की संज्ञा दी गई है।[32] इस संसार में सभी अपने कर्मों से बंधे हुए हैं। प्रत्येक प्राणी को अपने शुभाशुभ कर्मों के शुभाशुभ फलों को भोगना ही पड़ता है। वेणीसंहार नाटक के अनेक स्थलों पर कर्मों को कारण के रूप में कहते देखा जा सकता है। युधिष्ठिर द्रौपदी से कहते हैं कि मैंने सभी लोगों का प्राण संकट में डाला है। प्रकारान्तर से उनका कहना है कि अगर मैं जुआ नहीं खेलता तो आज यह संकट नही आता।[33]

पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय दर्शनों का महत्त्वपूर्ण विषय है। सांख्य[34] की कर्तृत्वाभिमानी आत्मा और वेदान्त[35] का माया की मोहात्मिका शक्ति के वशीभूत हुआ जीव सुख-दुःखादि रूप बन्धन में पड़कर संसार चक्र में पुनर्जन्म लेता रहता है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि इस लोक और परलोक में एक ही परमात्मा की सत्ता है, इस एकत्व में जो अज्ञानी अनेकत्व को देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु (संसार) को प्राप्त करता है।[36] गीता में श्री कृष्ण कहते हैं कि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को

त्याग कर नवीन वस्त्रों को धारण कर लेता है, उसी प्रकार देही पुराने शरीर को छोड़ने के बाद नवीन शरीर को प्राप्त कर लेता है।[37]

नाटककार की पुनर्जन्म के विषय में श्रद्धा अत्यन्त स्पष्ट है। नाटक के चतुर्थ अंक में मूर्च्छित दुर्योधन को खोजने वाले कर्ण के सन्देश वाहक सुन्दरक के मन में तरह-तरह के विचार चल रहे थे, तभी उसको लगता है कि गांधारी अपने पुत्र को युद्ध में मारा गया सुनकर लाल वस्त्र पहन कर अलंकारों से अलंकृत होकर अपनी पुत्रवधू के साथ मरने जा रही हैं, तब वह कहता है कि हे वीर जननी आप धन्य हैं, आपको दूसरे जन्म में पुत्र मृत्यु नहीं देखनी पड़ेगी।[38]

नाटक के छठे अंक में छद्म मुनि वेषधारी चार्वाक नामक राक्षस का प्रवेश दिखाया गया है। वह अपने आपको सुयोधन का मित्र बताता है और कहता है कि मैं पाण्डवों को धोखा देने के लिए घूम रहा हूँ।[39] दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो चार्वाक दर्शन के प्रति भट्टनारायण हेय धारणा रखते हैं। अन्यथा राक्षस का नाम चार्वाक नहीं रखते।

चार्वाक दर्शन की निन्दा का मूल कारण उनकी आचार-मीमांसा है। लेकिन इसकी ज्ञानमीमांसा की विशेषतायें आज भी उपादेय हैं। यह दर्शन ऋण लेकर घी पीने का उपदेश करता है, मदिरा पीने का नहीं।[40] आचार्य बलदेव उपाध्याय कहते हैं कि चार्वाक ज्ञानमीमांसा की प्रधान विशेषता है- आप्तवचनों में अन्ध श्रद्धा या विश्वास का न रखना। श्रद्धा किसी भी सत् सिद्धान्त की जननी नहीं है, सिद्धान्त की पुष्टि तो तर्क से होती है। सच्चा अविश्वास अन्धविश्वास की अपेक्षा दार्शनिक तत्त्वों की समीक्षा के लिए अधिक मूल्य रखता है।....चार्वाक प्राचीन काल के भारतीय वैज्ञानिक हैं जो तर्क की कसौटी पर ही सत्य को कसते हैं।[41]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि वैष्णव सम्प्रदाय में आस्था रखने वाले भट्टनारायण ने वीर रस प्रधान वेणीसंहार नाटक में सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा आदि दर्शनों के विषयों का प्रासंगिक और स्वाभाविक प्रतिपादन किया है। यही कारण है कि सम्पूर्ण नाटक में कुछ ही स्थलों पर दार्शनिकता के दर्शन होते हैं। दर्शन का थोड़ा प्रतिपादन भी कवि के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। वैष्णव भक्ति का चरम स्वरूप अद्वैत वेदान्त में ही सम्पन्न होता है। स्वाभाविक होने

से दार्शनिक विषय वस्तु नाटक के विकास में सहायक सिद्ध हुई है। कई घटनाएं कृष्ण के अद्वितीय व्यक्तित्व और माहात्म्य के कारण उत्कर्ष को प्राप्त हुई हैं।

संदर्भ –

1. *उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।*
   हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत् ।।
   दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
   विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद्भविष्यति।।
   धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
   लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति।।" नाट्यशास्त्र 1/113, 114, 115
2. *न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।*
   न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते। नाट्यशास्त्र् 1.116
3. *धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।*
   करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिबंधनम् ।। काव्यालंकार 1/2
4. *काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये*
   सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।। काव्यप्रकाश 1/2
5. *चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।*
   काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते।। साहित्यदर्पण 1/2
6. *त्रिवर्गसाधनं नाट्यम्...... । अग्निपुराण 338/7*
7. *श्रीमद्भागवत महापुराण 6/2/13*
8. *हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हतिपातनाम्।। श्रीमद्भागवत महापुराण 6/2/15*
9. *प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरणयोरञ्जलिरयम्।। वेणीसंहार, प्रथम अंक 1*
10. *समाधिर्द्विविधः सविकल्पको निर्विकल्पकश्चेति। तत्र सविकल्पको नाम ज्ञातृज्ञानादि-विकल्पलयानपेक्षयाऽद्वितीयवस्तुनि तदाकाराकारितायाश्चित्तवृत्तेरवस्थानम्।। .... निर्विकल्पकस्तु ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयापेक्षयाऽद्वितीयवस्तुनि तदाकाराकारिता-याश्चित्तवृत्तेरतितरामेकाकीभावेनावस्थानम् ।। वेदान्तसार*
11. *वितर्कविचारानन्दाऽस्मितारूपानुगमात्सम्प्रज्ञातः।। योगसूत्र, समाधिपाद 17*
12. *पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।।*
    योगसूत्र, कैवल्यपाद 34

13. आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्ति देवं पुराणम्।। वेणीसंहार, प्रथम अंक 23

14. सहदेवः - आर्य! किमसौ दुरात्मा सुयोधनहतको वासुदेवमपि भगवन्तं स्वरूपेण न जानाति? वेणीसंहार, प्रथम अंक

15. शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते।
मैत्रेय भगवच्छब्दस्सर्वकारणकारणे।। विष्णुपुराण 6/5/72

16. वेणीसंहार, षष्ठ अंक 43

17. वेणीसंहार, प्रथम अंक

18. प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।
अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः।। सांख्यकारिका 12

19. अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो....। कठोपनिषद् 1/2/18

20. न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। श्रीमद्भगवद्गीता 2/20

21. वेणीसंहार, प्रथम अङ्क 4

22. रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।। श्रीमद्भगवद्गीता 14/7

23. प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि।। सांख्यकारिका 22

24. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।।- तैत्तिरीयोपनिषद् 3/1/3

25. श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।। कठोपनिषद् 1/2/7

26. नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो,
न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्। मुण्डकोपनिषद् 3/2/4

27. तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति। केनोपनिषद् 3/2

28. तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।। कठोपनिषद् 1/2/12

29. *तरति शोकमात्मवित् । छान्दोग्योपनिषद् 7/1/3*
30. *मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।*
    अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ।। श्रीमद्भागवत महापुराण 10/1/38
31. *यदि समरमपास्यनास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।*
    अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ।। वेणीसंहार तृतीय अंक 6
32. *क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः । योगसूत्र 1/24*
33. *वेणीसंहार, षष्ठ अंक*
34. *अभिमानोऽहंकारस्तस्माद्..... । सांख्यकारिका 24*
35. *अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्तशब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुप्तिः यस्यां स्वरूपप्रतिबोध-रहिता शेरते संसारिणो जीवाः । शारीरकभाष्य 1/4/3*
36. *मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति । कठोपनिषद् 2/1/10*
37. *वासांसि जीर्णानि यथा विहाय*
    नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
    तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
    न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।। श्रीमद्भगवद्गीता 2/22
38. *साहु वीरमादे! साहु । अण्णऋस्स जन्मनि णूणं अणिहदपुत्तआ हुविस्ससि । वेणीसंहार चतुर्थ अंक*
39. *राक्षसः - (आत्मगतम्) एषोऽस्मि चार्वाको नाम राक्षसः सुयोधनस्य मित्रं पाण्ड-वान्वञ्चयितुं भ्रमामि । वेणीसंहार, षष्ठ अंक*
40. *यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।*
    भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।। चार्वाक दर्शन 1
41. *आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, नवीनतम संस्करण-1997, पृष्ठ 88-89,*

4

वेणीसंहार का धर्मशास्त्रीय पक्ष

दीपक तिवारी

महाकवि भट्टनारायण प्रणीत वेणीसंहार शास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नाटक है। यह महाभारत की कथा पर आश्रित है। इसकी कथावस्तु द्रौपदि की वेणी पर आधारित है। महाभारत के युद्ध का इसमें चित्रण किया गया है। कवि के द्वारा नाट्य वस्तु को जिस कथानक के माध्यम से प्रस्तुत किया है उस कथानक में पद-पद पर किसी न किसी रूप में धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों की झलक देखने को मिलती है। जैसे सम्वादों के मध्य में जब कोई व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ से मिलता है तब वह विनम्रतापूर्वक सम्मान सहित उनका अभिवादन किरता है। उनको तात शब्द से या आर्य शब्द से सम्बोधित करता है। यहाँ तपर्ण करने का वर्णन प्राप्त होता है। आत्मदाह का वर्णन, जलांजलि, उदकक्रिया, क्षात्रधर्म, साहस, अभिवादन, अर्घ्य, वध्यावध्य, कीर्तन, दुःस्वप्न दूर करने के उपाय, संग-कुसंग, कर्म-कुकर्म, द्यूतकर्म, पिशाचों के द्वारा रक्तपान, भीम के द्वारा दुर्योधन की जंघा खण्डित करना आदि कर्म धर्मशास्त्र के अन्तर्गत आते है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार धर्मशास्त्र शब्द दो शब्दों का संयुक्त रूप है। जिसमें धर्म और शास्त्र इन दो पदों का प्रयोग किया गया है। धर्म का अर्थ ''ध्रियते लोको·नेन, धरति लोकं वा'' इसके पर्याय कर्त्तव्य, आचार, नैतिकता, अधिकार, न्याय, निष्पक्षता, पवित्रता, औचित्य, शालीनता, नीतिशास्त्र, प्रकृति, स्वभाव आदि हैं।[1] शास्त्र का अर्थ 'शिष्यते अनेन' इसके पर्याय आज्ञा, समादेश, नियम, विधि आदि हैं।[2] इस प्रकार धर्मशास्त्र शब्द का अर्थ ''धर्माय धर्मस्य वा शास्त्रम्'' अर्थात् धर्म प्रयोजन है जिसका ऐसा शास्त्र धर्मशास्त्र कहा गया है। स्मृति ग्रन्थ धर्मशास्त्र के अन्तर्ग प्राप्त होते हैं यथा - ''धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः''[3]। मनु आदि ऋषियों के जो विधि - निषेधात्मक ग्रन्थ हैं उन्हें कुल्लूकभट्ट जी ने स्मृति ग्रन्थ कहा है यथा - ''मन्वादिशास्त्रं स्मृतिः''[4]।

वेणीसंहार नामक नाटक में सूत्रधार के माध्यम से भट्टनारायण ऐसे कर्मों का उल्लेख किया है जिसके करने से मनुष्य अपराधी माना जाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में विस्तारपूर्वक इन कर्मों का वर्णन मिलता है।[5] छलपूर्वक अग्नि में जलाकर किसी को मारना इस सन्दर्भ में दुर्योधनादि के द्वारा लाक्षागृह में पांडवों को छलपूर्वक मारने का प्रयास करना, बाल्यकाल में भीम को विषयुक्त भोजन खिलाकर मारने का प्रयास करना, दुर्योधन आदि के द्वारा द्यूत सभा में द्रौपदी के वस्त्रहरण कर अपमान करना, द्यूत क्रीडा में शकुनी की सहायता से छल करके पांण्डवों को हराना आदि ये सभी कर्म कौरवों के द्वारा किये गये हैं यथा -

''लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवैशैः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च न प्रहृत्यः।
आकृष्यपाण्डववधूपरिधानकेशान् स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः।।''[6]

वेणीसंहार में द्यूतकर्म का वर्णन भी प्राप्त है। भीम के द्वारा युष्ठिर के विषय में उक्ति प्राप्त होती है कि जुएं में महाराज युधिष्ठिर अपने क्षत्रियोचित धर्म को पांसों से हार गये।

''यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः।
दीव्यताऽक्षैस्तदाऽनेन तदपि हारितम्।।''[7]

मनुस्मृति में द्यूत कर्म की निन्दा तथा उससे होने वाली हानियों के विषय में सचेत किया गया है। वहाँ बताया गया है कि द्यूत कर्म काम से उत्पन्न दस व्यसनों के अन्तर्गत आते है जो इन व्यसनों में आसक्त होता है उसके धर्म, अर्थ और शरीर का भी नाश हो जाता है।

''कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः। वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु।।
मृगयाऽक्षो दिवास्वप्न परिवादः स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाऽट्या च कामजो दशको गणः।।''[8]

द्यूतकर्म एक प्रकार का व्यसन है। जिससे मनुष्य को बचना चाहिए।

अभिवादन का उल्लेख भी भट्टनारायण यहां करते हैं। इस विषय में प्रथमांक में उक्ति प्राप्त होती है जिसमें भीम कहते हैं कि गुरुजन वन्दनीय होते हैं। **''वन्द्याः खलु गुरवः।''**[9] वेणीसंहार के चतुर्थ अंक में जब दुर्योधन युद्ध में प्रवेश करने के लिए तैयार होता है। तभी संजय सहित धृतराष्ट्र और गांधारी वहां पर आ जाते हैं। दुर्योधन को इनके आने की सूचना प्राप्त होने पर अपने को निर्लज्ज समक्षता है और उनके समक्ष जाकर क्या कहूंगा इस संशय से युक्त हो जाता है और

विचार करता है तब सूत दुर्योधन से कहता है कि माता-पिता, गुरुजन वन्दनीय होते हैं इसलिए उन्हें प्रणाम करना चाहिए। **''तथाऽप्यवश्यं वन्दनीयौ गुरु।''**[10] पंचम अंक में भीम के द्वारा पुनः एक उक्ति प्राप्त होती है। भीम कहते हैं कि सदाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। गुरुजनों को अभिवादन किये बिना चले जाना ठीक नहीं है।

''भीमः - अनुल्लंघनीयः सदाचारः। न युक्तमनभिवाद्य गुरुन् गन्तुम्।।''[11]

स्मृतिकारों ने भी अभिवादन करने का निर्देश किया है। यथा -

''अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारितस्य वर्धन्ते आयुविर्द्यायशो बलम्।।''[12]

वेणीसंहार में साहचर्य अर्थात् संग करने का वर्णन प्राप्त होता है। संग करने से मानव में किस प्रकार उसके संस्कारों में परिवर्तन होता है इसका वर्णन भट्टनारायण ने किया है। प्रथमांक में सहदेव साहचर्य के संबंध में कहते हैं कि ''पतियों के साहचर्य से स्त्रियों के चित्त भी पतियों के समान हो जाते हैं; क्योंकि विष के वृक्ष पर आश्रित लता मधुर होने पर भी लोगों को मूर्छित कर देती है।''

''स्त्रीणां हि साहचर्याद्भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि।
मधुराऽपि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली।।''[13]

दुःस्वप्न के उपाय भी यहाँ बताया गया है। वेणीसंहार नाटक के द्वितीय अंक में दुःस्वप्न के सन्दर्भ में वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रसंग में दुर्योधन की पत्नी भानुमति के अशुभ स्वप्न का संकेत जानकर सखि कहती है कि धर्म की चर्चाओं, देवताओं के कीर्तन करने से तथा दूर्वा आदि मांगलिक वस्तुओं को धारण करने से अशुभ स्वप्न भी मांगलिक फल वाले हो जाते हैं-

''सखी- प्रियसखि! यद्येवं तत् कथय स्वप्नं येन आवामपि प्रतिष्ठापयन्त्यौ धर्मप्रशंसया देवतानां संकीर्तनेन दूर्वादिपरिग्रहेण च परिहरिष्यामः।।''[14]

''सुवदना-यत्किमपि आहितं तद्भागीरथीप्रमुखानां नदीनां सलिलेनापह्नियताम्। ब्राह्मणानामाशिषा आहुतिहुतेन प्रज्वलितेन भगवता हुताशनेन च अन्तर्यताम्।।''[15]

भट्टनारायण सूर्योपासक हैं। इसलिए भगवान सूर्य को भानुमति के द्वारा अर्घ्यदान करने का उल्लेख वेणीसंहार के द्वितीय अंक में आया है -

''सखी-तत्समयस्ते कुसुमचन्दनगर्भेणाऽर्घेण पर्युपस्थातुम्।''
''भानुमति- उपनय मेऽर्घ्यभाजनं यावद्भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्या निर्वर्तयामि।''
''चेटि-तन्निवर्तयतु भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्याम्।''[16]

स्मृतियों में राजधर्म के अन्तर्गत विविध प्रकार के धार्मिक क्रियाकलापों के निमित्त पुरोहित की नियुक्ति का वर्णन प्राप्त होता है।[17] जिसमें पुरोहित राजपरिवार के धार्मिक कृत्यों का सम्पन्न कराता था। ग्रह पूजन संबंधित भी प्राप्त होते है जिसमें सूर्यादि ग्रहों की पूजा का मन्त्रों सहित वर्णन प्राप्त होता है।[18]

वेणीसंहार में ब्राह्मण को अबध्य बताया गया है। इसके विषय के तृतीयांक में अश्वत्थामा और कर्ण के मध्य में जब विवाद हो जाता है तब कर्ण क्रोध में अश्वत्थामा का तिरस्कार करते हुए कहता है कि तू जाति से अवघ्य है। इस प्रकार कर्ण के द्वारा अश्वत्थामा के विषय में कहा गया है जो कि धर्मशास्त्र के अनुकूल वाक्य है - **''जात्या कामवध्योऽसि।''**[19] मनु इस विषय में स्पष्ट रूप से अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि निकृष्ट कर्म में लिप्त होता हुआ ब्राह्मण भी वध के योग्य नहीं है -

''न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात् समग्रधनमक्षतम्।।''[20]

धर्मशास्त्रीयग्रन्थों में मृत्यु के उपरान्त मृत व्यक्ति को जलांजलि देने का विधान किया गया है।[21] इसी जलांजलि का वर्णन श्रीभट्टनारायण जी ने अपने नाटक वेणीसंहार में किया है जब दुर्योधन के बन्धु-बान्धव के युद्ध में मारे जाने पर शोक प्रकट करता है और कहता है कि पाण्डवों को मारकर अपने मृत बन्धुओं को जलांजलि देकर अपने इस शरीर का परित्याग कर देंगें -

''हत्वा पार्थान् सलिनमशिवं बन्धुवर्गाय दत्त्वा।''[22]

इसी प्रकार का वर्णन षष्ठांक में भी प्राप्त होता है जब दुर्योधन का मित्र चार्वाक राक्षस कपट मुनि का भेष धारण कर युधिष्ठिर के पास आता है तथा भीम और अर्जुन की मृत्यु का मिथ्या समाचार सुनाता है। जिससे युधिष्ठिर और द्रौपदी चावार्क राक्षस के वचनों पर विश्वास कर लेते हैं और भाम और अर्जुन के प्रति शोकाकुल हो जाते हैं तब युधिष्ठिर उनके प्रति तपर्ण करते हैं और द्रौपदी से भी तपर्ण करने को कहते हैं -

''युधिष्ठिरः - स्वपक्षपातिनो वृकोदरस्य प्रियस्याऽर्जुनस्य उदकक्रियां कुरु।''[23]

आत्मदाह

धर्मशास्त्रकारों ने आत्महत्या को अत्यन्त निन्दनीय माना है।[24] वेणीसंहार के षष्ठांक में जब युधिष्ठिर और द्रौपदी भीम और अर्जुन के वध के समाचार को सुनकर शोकातुर हो जाते हैं और भावावेश में आकर के अपना आत्मदाह करने का निर्णय लेते हैं। इसका वर्णन भी प्राप्त होता है -

''युधिष्ठिरः - कृष्णे! ननूद्धतशिखाहस्ताऽऽहूता·स्मद्विधव्यसनिजनः समिद्धो भगवान्हुताशनस्तत्रेन्धनीकरोम्यातमानम्।''[25]

वेणीसंहार धर्मशास्त्र में कहे गये परम्परानुसार शिष्टजनों के आचरण में व्याप्त व्यवहार की छाया वेणीसंहार नाटक में स्थान-स्थान पर दिखाई देती है। युद्धकर्म इस नाटक का मुख्य वस्तु है। फिर भी पात्रों के सम्वाद में यथास्थान पर यथा भाव के अनुरूप धर्मशास्त्रीय मर्यादा का भी दर्शन प्राप्त होता है। सदाचार की मर्यादा को बनाए रखने के लिए नायक के माध्यम से ही श्रीभट्टनारायण ''अनुल्लंघनीयः सदाचारः'' सूक्तियों के माध्यम से बोध कराते है। इसी में युधिष्ठिर द्रौपदि से अपने पतियों को जलांजलि देने के लिए निर्देश करते हैं। इससे स्पष्ट है कि कवि के काल में पत्नियां भी अपने पति के लिए तपर्ण कर सकती थीं। नहीं करने योग्य कर्म करने से धर्म, अर्थ का नाश होता है इसका उल्लेख भी इसमें प्राप्त होता है। माता-पिता, गुरुजन आदि वरिष्ठ जन वन्दनीय होते हैं इसका भी बोध कवि के द्वारा कराया गया है। उचित सूक्तियों के माध्यम से भी कवि लोक का उचित मार्गदर्शन कर रहे हैं यह भी दिखाई देता है। इस प्रकार वेणीसंहार नाटक अपने अभीष्ट को प्राप्त करते हुए लोक के व्यवहार का ज्ञान सहज और सरस विधि से कराने में समर्थ रूप से दिखाई देता है जिसका आधार धर्मशास्त्र ही रहा है।

संदर्भ -

1. *संस्कृत-हिन्दी-कोश, पृ.489*
2. *संस्कृत-हिन्दी-कोश, पृ.1015*
3. *मनुस्मृति, 2/10*
4. *मन्वर्थमुक्तावली, मनु .2/10*

5. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/122,123

6. वेणीसंहार, 1/8

7. वेणीसंहार, 1/13

8. मनुस्मृति 7/46,47

9. वेणीसंहार, प्रथमांक पृ. 37

10. वही, चतुर्थांक पृ. 246

11. वेणीसंहार,पंचमांक पृ. 284

12. मनुस्मृति 2/121

13. वेणीसंहार, प्रथमांक पृ. 39

14. वही, प्रथमांक पृ. 63

15. वही, द्वितीयांक पृ. 80

16. वही, द्वितीयांक पृ. 86

17. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/140

18. याज्ञवल्क्यस्मृति ग्रहशान्ति प्रकरण

19. वेणीसंहार, तृतीयांक पृ. 177

20. मनुस्मृति 8/280

21. याज्ञवल्क्यस्मृति, श्राद्धप्रकरण

22. वेणीसंहार, चतुर्थांक पृ. 243

23. वही, षष्ठांक पृ. 374, प. 375, पृ.376

24. मनुस्मृति, 5/89, पाराशरस्मृति, 4/3-4

25. वेणीसंहार, षष्ठांक पृ. 37

5

वेणीसंहार में वर्णाश्रम व्यवस्था

साधना मौर्या

वर्णाश्रम व्यवस्था एक ऐसी जीवन पद्धति है जिसमें प्रत्येक दशा में प्रत्येक वर्ण के मानव को श्रम करना पड़ता है। ब्रह्मचर्य आश्रम के अन्तर्गत मनुष्य को परिश्रमपूर्वक विद्यार्जन-संयम-नियम का पालन करना आवश्यक है। गृहस्थाश्रम में व्यक्ति को पूर्णतः गृहस्थ बनकर अपने धर्मों का सम्पादन करना पड़ता है। वानप्रस्थ आश्रम में ईश्वराराधना अपेक्षित है तथा सन्यासाश्रम में त्याग एवं तपोमय दिनचर्या के साथ शरीर त्याग का विधान किया गया है। जावाल्योप-निषद् में चारों आश्रमों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मनुष्य को पहले ब्रह्मचर्याश्रम का परिपालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्याश्रम के दायित्वों को पूरा करने के पश्चात् गृहस्थाश्रम का आश्रय लेना चाहिए। उसके बाद वानप्रस्थ आश्रम को अपनाना चाहिए फिर वानप्रस्थ आश्रम को बिताकर सन्यास आश्रम में प्रवेश करना चाहिए-ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृही भवेत्। गृही भूत्वा वनी भवेत्। वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।[1] प्रव्रजेत् का तात्पर्य यहाँ सन्यासाश्रम से है।

महाकवि कालिदास रघुवंशियों की आश्रम व्यवस्था का उल्लेख इस प्रकार से करते हैं-

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।[2]

इस प्रकार महाकवि कालिदास यह बताना चाहते हैं कि रघुवंशी अपने बालकाल्य में अध्ययन एवं कठोर नियम में बँधकर ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करते थे। तरूणाई में सांसारिक विषयों का भोग करते हुए गृहस्थाश्रम का पालन करते

थे। वृद्धाश्रमवस्था में मुनियों के समान जंगलो में रहकर तपस्या करते थे अन्त में योग द्वारा शरीर का परित्याग करते थे।

महाकवि भट्‌टनारायण प्रणीत वेणीसंहार नाटक में यथोचित विभिन्न स्थलों पर हमें ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-सन्यास नामक चार प्रकार के वर्णाश्रम व्यवस्था का वर्णन प्राप्त होता है। इस नाटक में युद्ध के समय द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन एवं अश्वत्थामा के वार्तालाप से हमें गुरु द्रोणाचार्य द्वारा ब्रह्मचर्य स्थिति में शिक्षा प्राप्त करने वाले दुर्योधन एवं अश्वत्थामा के शस्त्र विद्यार्जन की सूचना मिलती है। दुर्योधन कहता है-

तातस्तव प्रणयवान्स पितुः सखा मे, शस्त्रे यथा तव गुरुः स तथा ममापि।
किंतस्य देह निधने कथयामि दुखं, जानीहि तद् देहनिधने गुरुशुचा मनसा त्वमेव।।[3]

वे तुम्हारे प्रणयी पिता मेरे पिता के मित्र थे। शस्त्रविद्या में वे जैसे तुम्हारे गुरु थे वैसे मेरे भी। उनके शरीर का अन्त हो जाने पर किस प्रकार अपने दुःख को मैं व्यक्त करूँ। इसे तो महान शोक वाले मन से तुम स्वयं ही ज्ञात कर लो। इस प्रकार कारुणिक स्थल पर भी शास्त्रों में निर्धारित ब्रह्मचर्य अवस्था में अर्जित की गयी विद्या के विषय में उल्लेख बड़ी सहजता के साथ प्राप्त हो रहा है। न केवल इतना ही अपितु ब्रह्मचर्याश्रम नियम का पालन न करने वाले बलराम को भी कठोर उलाहना देते हुए युधिष्ठिर कहते हैं-

ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता क्षत्रियाणां न धर्मो
रूढ़ं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यानुजे मे।
तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः
कोऽन्यं पन्था यदसि विमुखो मन्दभाग्ये मयीत्थम।।[4]

हे बलराम! तुमने स्नेह को भी अपने हृदय में स्थान नहीं दिया है। तुम्हारे द्वारा क्षत्रियोचित धर्म का पालन भी नहीं किया गया। अपने छोटे भाई श्रीकृष्ण तथा मेरे छोटे भाई अर्जुन के साथ जो घनिष्ठ मित्रता है उस पर भी विचार नहीं किया। दोनों शिष्यों भीम और दुर्योधन पर भी तुम्हारा स्नेह भाव समान होना चाहिए था। फिर यह कौन सा मार्ग है जो मुझ अभागे के प्रति तुम इस प्रकार से प्रतिकूल हो गये। अतः यहाँ ब्रह्मचर्याश्रम की जो सीमा निर्धारित की गयी है उसका अतिक्रमण परिलक्षित हुआ है। इसके साथ यह भी सूचित होता है कि वर्णाश्रम व्यवस्थाएं सबके लिए समान है। नियमों के समक्ष कोई छोटा या बड़ा नहीं है।

नाटक का नामकरण ही गृहस्थ धर्म की सुदृढ़ स्थिति को सूचित करता है। गृहस्थाश्रम के अन्तर्गत गृहस्थी पुरुष यज्ञ, दान आदि कर्मों को भलीभाँति सम्पादित करते हुए अपने कुल के मान-सम्मान एवं स्वाभिमान पर भी पूर्ण नियन्त्रण रखता है। प्रस्तुत नाटक में अधर्मी कौरवों से अपमानित द्रौपदी को सम्मान व स्वाभिमान प्रदान करने हेतु पाण्डवों ने कुरुवंश का नाश कर दिया। न केवल इतना ही अपितु द्रौपदी के वेणीसंहरण द्वारा नाटक का अन्त भी होता है। वस्तुतः महाभारत कथा अथवा महाभारत को उपजीव्य मानकर लिखी गयी कृतियाँ जब-जब समाज अथवा राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत होंगी तब-तब वे समाज अथवा राष्ट्र में यह समझ विकसित करने का कार्य करेंगी कि स्त्री-जाति को अपमानित करने का दण्ड पूरे वंश, समाज यहाँ तक कि समूचे राष्ट्र को भी मिल सकता है। इस प्रकार वेणीसंहार नामकरण गृहस्थ आश्रम धर्म को प्रस्तुत करता हुआ सम्पूर्ण स्त्री-जाति के सम्मान या स्वाभिमान का सूचक है। गृहस्थाश्रम व्यवस्था का अत्यन्त सटीक एवं स्पष्ट उदाहरण नाटक के प्रथम अंक में पाण्डव एवं पांचाली के व्यक्तित्व में एक साथ परिलक्षित होता है जहाँ भीमसेन कहते हैं-

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः
संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नीगृहीतव्रता।
कौरव्याः पशवः प्रिया परिभववलेशोपशान्तिः फल
राजन्योनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः।।[5]

हम चारों भाई यज्ञकर्ता हैं। भगवान श्रीकृष्ण यज्ञ कर्म के उपदेशक हैं। धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध रूपी यज्ञ में दीक्षा ग्रहण किये हुए यजमान हैं। पत्नी द्रौपदी अधर्मी शत्रु कौरवों पर विजय प्राप्ति का व्रत धारण की हुयी हैं। कौरव बलि के पशु हैं। प्रिया के अपमानजन्य दुःख की शान्ति ही युद्ध का परिणाम है। राजाओं का आह्वान करने के लिए यशरूपी दुन्दुभी जोरों से बज रही है। इस प्रकार हम पाते हैं कि प्रस्तुत श्लोक द्वारा नाटक के नामकरण की सार्थकता के साथ गृहस्थाश्रम व्यवस्था भली-भाँति चित्रित हो उठी है।

युद्ध में द्रोणाचार्य की मृत्यु के उपरान्त अश्वत्थामा के लिए कृपाचार्य द्वारा दिया गया यह उपदेश ही गृहस्थाश्रम व्यवस्था को पुष्ट करता है जो मृत पिता की आत्मा की शान्ति के लिए अनिवार्य कर्त्तव्य है-

निवापांजलि केतनैः श्राद्धकर्मभिः
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा।।[6]

पुत्र को दोनों ही लोकों में पितरों के अनुकूल आचरण करना चाहिए। हे अश्वत्थामा! पितरों को दी जाने वाली जलांजलि के दान से तथा पिण्डदान आदि श्राद्धकर्मों से उनका कल्याण करने में तुम समर्थ हो न कि अन्य प्रकार से।

नाटक के द्वितीय अंक में दुर्योधन की पत्नी भानुमती स्वप्न देखती है कि किसी एक नेवले ने अकेले ही सैकड़ों सर्पों को मार डाला है-**प्रमदवन आसीनाया ममाग्रत एव दिव्यरूपिणा नकुलेनाहिशतं व्यापादितम्।**[7] इस स्वप्न दर्शन से उसे अपने सौ कौरवों के विनाशरूपी अनिष्ट की प्रतीति होने लगती है। अतः अत्यन्त दुःखी भानुमती अनिष्ट निवारणार्थ देवार्चन हेतु प्रवृत्त हो जाती है तथा सूर्यदेव से कामना करती हुई कहती है-

भगवन् अम्बरमहासर एक सहस्र पत्र पूर्वदिशावधूमुखमण्डल कुङ्कुम-विशेषक, सकलभुवनांगणदीपक, अत्र स्वप्नदर्शने यत्किमप्यत्याहितं तद्भगवतः प्रणामेन कुशलपरिणामि सशत भ्रातृकस्यार्य पुत्रस्य भवतु।[8]

आकाशरूपी विशाल जलाशय के अद्वितीय कमल! पूर्व दिशा रूपी वधु के मुखमण्डल के कुङ्कुमात्तिलक। समस्त संसार रूपी आंगन के दीपक! इस स्वप्न दर्शन में जो भी अनिष्ट निहित हो वह भगवान् के अभिवादन से सभी भाइयों सहित आर्यपुत्र के लिए कल्याणप्रद हो।

एतदतिरिक्त गृहस्थाश्रम धर्म का पूर्ण आचरण करती हुयी भानुमती सूर्यदेव की अर्चना करने के पश्चात् अन्य देवताओं की वन्दना करना नहीं भूलती। अपनी परिचारिका से कहती है-हला, उपनय में कुसुमानि यावदपरासामपि देवतानां सपर्या निवर्तयामि।[9] अरी, मुझे फूल दो जिससे कि मैं अन्य देवताओं की पूजा कर सकूँ। इसी प्रकार पंचम अंक में धृतराष्ट्र के द्वारा दुर्योधन को गृहस्थ जीवन का उपदेश दिया गया है-

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत् फाल्गुनात्।
वत्सानां निधनेन में त्वयि रिपुः शेष प्रतिज्ञोऽधुना
मानं वैरिषु मुंच तात पितरावन्धाविमौ पालय।।[10]

यहाँ यह उल्लेख है कि महाभारत युद्ध में सर्वनाश हो चुका है। कौरव पक्ष

के सभी योद्धा वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं। हे दुर्योधन! मेरे सौ पुत्रों में से अब तुम्हीं केवल जीवित बचे हो। अब तुम अपने मान-अपमान को शत्रुओं पर छोड़ दो तथा हम दोनों (धृतराष्ट्र एवं गान्धारी) की अर्थात् अन्धे माता-पिता का पालन करो। वस्तुतः पूर्णतः पराजित होने के पश्चात् माता-पिता की सेवा के अतिरिक्त हठी दुर्योधन के पास अन्य कोई मार्ग नहीं बचता। इसके अतिरिक्त भी वह हठ नहीं छोड़ता, युद्ध करता है तथा विनाश को प्राप्त होता है।

प्रसंगानुकूल वेणीसंहार नाटक में वानप्रस्थाचरण को भी अपनाया जाता है। जहाँ द्रोणाचार्य अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार पाते ही वानप्रस्थ नामक वर्णाश्रम व्यवस्था को अपनाने हेतु तत्पर हो जाते हैं। अतः शोकान्धमनसा तेन विमुच्य छत्र धर्म कार्कश्यं द्विजाति धर्म सुलभोदैन्यपरिग्रहः कृतः।[11] भगवान श्री कृष्ण की विश्वरूप दर्शन लीला में भी सन्यासाश्रम की पराकाष्ठा परिलक्षित होता है। जिन्हें महाकवि इस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं-

आत्मारामो विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
य वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्ति देवं पुराणम्।[12]

जो आत्मलीन रहने वाले हैं। जिनका निर्विकल्पक समाधि में ही अनुराग होता है। ज्ञानाधिक्यवशात् जिनका तमोगुण रूपी बन्धन टुट गया है। सत्व गुण में ही जिनकी निष्ठा रहती है। जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सबका दर्शन करने में समर्थ होते हैं। ऐसे शाश्वत को (श्री कृष्ण को) मोहान्ध दुर्योधन भला कैसे देख सकता है? अर्थात् साधारण मानव के लिए सन्यास नामक वर्णाश्रम व्यवस्था को अनुभव करने की महती आवश्यकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भट्टनारायण प्रणीत वेणीसंहार नाटक में प्रसंगानुकूल ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यास नामक चतुर्वर्णाश्रम व्यवस्था का वर्णन भली-भाँति प्राप्त होता है। चतुर्वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत सम्मिलित धर्मकार्य सर्वग्राह्य एवं मानवजीवनोपयोगी है हमारे मनीषियों एवं विद्वानों द्वारा विभिन्न आश्रमों हेतु जो धर्म-कार्य निर्धारित किये गये उनका समसामयिक स्वरूप बदल सकता है। किन्तु लक्ष्य प्रत्येक काल एवं स्थिति में समान रहेगा। डॉ. राजदेव मिश्र वर्णाश्रम व्यवस्था एवं पुरुषार्थों के मध्य स्थित तादात्म्य

को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-''भारतीय संस्कृति में मानव के लिए चार पुरुषार्थों की सिद्धि विधेय मानी गयी है-धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि में ही मानव-जीवन की पूर्णता है। आश्रमों से इन पुरुषार्थों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन चारों पुरुषार्थों की सफलता आश्रमों पर निर्भर करती है। इन चारों पुरुषार्थों में धर्म का ज्ञान, मनन-चिंतन आदि ब्रह्मचर्य आश्रम से ही संभव है। वस्तुतः धर्म पुरुषार्थ की सिद्धि ब्रह्मचर्य आश्रम से सुलभ है। गृहस्थ आश्रम में रहने वाला व्यक्ति अर्थ और काम की प्राप्ति हेतु प्रयत्न करता है और सफल भी होता है। अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए गृहस्थ आश्रम से बढ़कर कोई दूसरा आश्रम नहीं है। संतान की प्राप्ति गृहस्थ आश्रम में ही होती है, जो काम की सफलता की द्योतक है। जहाँ तक चरम पुरुषार्थ मोक्ष की बात है उसकी पूर्व तैयारी वानप्रस्थ में होती है और सन्यास आश्रम में उसकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार पुरुषार्थों का आश्रमों के साथ सम्बन्ध अनायास स्पष्ट हो जाता है।''[13]

संदर्भ -

1. *जावाल्योपनिषद् मन्त्रांश 04*
2. *रघुवंश महाकाव्य, महाकवि कालिदास 1/8*
3. *''भट्टनारायण प्रणीत वेणीसंहार नाटकम्'' व्याख्याकार डॉ. बाल गोविन्द झा, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, पृ. सं. 170 (वेणीसंहार से सम्बन्धित सभी उद्धरण इसी पुस्तक से लिये गये हैं।)*
4. *वही, पृ. सं. 354*
5. *वही, पृ. सं. 54-55*
6. *वही, पृ. सं. 151*
7. *वही, पृ. सं. 76*
8. *वही, पृ. सं. 91*
9. *वही, पृ. सं. 91*
10. *वही, पृ. सं. 257-258*
11. *वही, पृ. सं. 165*
12. *वही, पृ. सं. 50*
13. *राजदेव मिश्र, भारतीय संस्कृति, निर्मल प्रकाशन, पृ. सं. 76*

6

वेणीसंहार नाटक में नारी अस्मिता

आशा सिंह रावत

भट्टनारायण के इस नाटक में द्रौपदी के वेणीबंधन की प्रतिज्ञा और उसकी सफलतम परिणति वास्तव में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति है। स्त्री अस्मिता अर्थात् स्त्री का आत्मसम्मान, स्वाभिमान, गौरव, अहंभाव, मजबूती, सशक्तिकरण अथवा वजूद की रक्षा आदि-आदि को स्त्री अस्मिता के रूप में रखा जा सकता है। केवल स्त्री ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति का उत्तरदायित्व बनता है कि वह उसके अस्तित्व व मान-सम्मान और स्वाभिमान के प्रति सचेत व सन्नद्ध रहे। यदि कहीं विरोधी एवं विपरीत परिस्थितियाँ बनती हैं, तो यह हमारे घर, परिवार, समाज व राष्ट्र के प्रत्येक जन का कर्तव्य बनता है कि वे इस हेतु प्रतिकार व संघर्ष करें। स्त्री के मान-सम्मान तथा वर्चस्व व वजूद के लिए किया गया संघर्ष व प्रतिकार स्त्री अस्मिता का सूचक है।

वेणीसंहार नाटक में जहाँ एक स्त्री- द्रौपदी के स्वाभिमान के आहत होने तथा उसकी आह! और असहनीय पीड़ा को शमन करने का यदि कोई उपाय है, तो वह सिर्फ उसकी अस्मिता को तार-तार करने वाले दुराचारियों का सर्वनाश, ऐसा सर्वनाश जिसे सम्पूर्ण मानवजाति युगों-युगों तक याद रखेगी और फिर कभी कोई स्त्री का अपमान, दुर्दशा और उसे प्रताड़ित करने का दुःसाहस कदापि न कर सकेगा।

प्रस्तुत नाटक में स्त्री अस्मिता का स्वर और भाव स्पष्टतः देखे जा सकते है। मुख्य रूप से भीमसेन और द्रौपदी, जो कि नाटक के नायक-नायिका हैं, स्त्री अस्मिता का प्रतिनिधित्व करते हैं।[1] द्रौपदी के साथ किए गए दुर्व्यवहार और अपमान का प्रक्षालन तथा आत्मसम्मान अथवा स्वाभिमान की रक्षा से बढ़कर अन्य

कुछ भी न तो भीमसेन को स्वीकार्य है और न ही स्वयं द्रौपदी को। यही कारण है कि अपराधी कौरवों के साथ किसी भी प्रकार की संधि अथवा समझौता इन्हें स्वीकार नहीं। नाटक में यद्यपि नायिका द्रौपदी की उपस्थिति प्रारम्भिक व अंतिम अर्थात् प्रथम व छठे अंक में ही दिखाई गई है और वह खुले केशों के साथ उपस्थित होकर मानो साक्षात् अपमान से पीड़ित तथा अस्मिता के लिए संघर्ष करने वाली स्त्री के रूप में प्रस्तुत होती है तथा अपने खुले केशों से बार-बार अपने अपमान का बदला लेने का स्पष्ट संकेत देती है। परन्तु इसके अलावा भी सम्पूर्ण नाटक का आलम्बन अपमान पीड़िता द्रौपदी है। उसका यही अपमान और इस अपमान का प्रक्षालन स्वयं द्रौपदी व पाण्डवों का ध्येय बना हुआ है, जिन्हें द्रौपदी के खुले केश बार-बार उद्‌दीप्त करते हैं।[2]

यह उद्‌दीपन इतना अधिक बढ़ जाता है कि कौरववंश रूपी जंगल को जलाकर ही शान्त होता है। जैसा कि नाटक के प्रथमांक में ही कहा गया है कि सत्यव्रत के भङ्ग हो जाने के भय से प्रयत्नपूर्वक जिसे मन्द किया गया था, कुल की शान्ति चाहने वाले उस शान्तिशील व्यक्ति के द्वारा जिसे भुला देना भी चाहा गया था; जुआरूपी अरणि से बढ़ी हुई वही युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि राजकुमारी द्रौपदी के केश एवं वस्त्रों को खींचे जाने के कारण विशाल होकर सम्प्रति कौरववंशरूपी जंगल में भड़क उठी है "............. नृपसुता केशाम्बराकर्षणैः क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते।"[3] यहाँ देखा-समझा जा सकता है कि सत्यव्रत और शान्ति के लिए भले ही युधिष्ठिर कौरवों के अपराधों को क्षमा कर सकते थे, परन्तु द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचकर किए गए अपमान की पीड़ा असह्य हो रही है और उसमें भी बार-बार द्रौपदी के खुले केश इस पीड़ा को बढ़ा रहे हैं; अतः उसके सम्मान व स्वाभिमान की रक्षा तथा अपमान प्रक्षालन हेतु अब शान्ति, क्षमा, धैर्य आदि को त्यागकर उस संघर्ष का समय आ गया है, जो द्रौपदी की अस्मिता हेतु किया जाना परमावश्यक है। वैसे भीषण क्रोधाग्नि तथा भयंकर रणसंघर्ष अथवा युद्ध सदैव विनाशकारी ही सिद्ध होते हैं, परन्तु भीमसेन युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि से प्रसन्न हैं तथा चाहते हैं कि वह बिना किसी अवरोध के खूब बढ़े, अत एव कहते हैं- "जृम्भतां जृम्भतामप्रतिहतप्रसरमार्यस्य क्रोधज्योतिः।"[4] इस प्रकार भीमसेन युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि को और अधिक भड़काने की चाह में द्रौपदी के अपमान के

प्रतिशोध की उत्कटाभिलाषा निहित है। उनके लिए महाभारत का महासंग्राम कोई भीषण युद्ध नहीं, वरन् रणयज्ञ है। ऐसा रणयज्ञ जिसमें राजा युधिष्ठिर युद्धरूपी यज्ञ में दीक्षा ग्रहण किए हुए यजमान हैं। पत्नी द्रौपदी व्रतधारण किए हुए हैं, भीमादि चारों भाई ऋत्विक्- यज्ञकर्ता हैं तथा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण यज्ञकर्म के उपदेशक- आचार्य हैं। कौरव उस यज्ञ में बलि के पशु हैं और महारानी तथा पाण्डवों की प्रिया द्रौपदी के तिरस्कारजन्य दुःख का शमन ही उस यज्ञ का फल है-

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः।
संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता।
कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलम्।
राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः।।[5]

इस रणयज्ञ में राजाओं का आह्वान करने के लिए यशरूपी दुन्दुभि जोरों से बज रही है। इस प्रकार सभी पाण्डवों और पाण्डवपक्षीय लोगों के लिए भावी महाभारत युद्ध, कोई युद्ध न होकर एक रणयज्ञ बना हुआ है; क्योंकि यह रण किसी को अकारण आहत या विनाश करने के लिए नहीं, वरन् उस दुःख के प्रतिकार व शमन हेतु किया जा रहा है, जो प्रत्येक स्त्री और सभ्य समाज के लिए बहुत बड़ी वेदना है तथा स्वाभिमान का घात है। अतः समस्त स्त्री जाति, सभ्य समाज और राजकुल को कलंकित करने वाले कलुषितात्माओं को इस रणयज्ञ में आहूत कर देना वह श्रेष्ठ कार्य है, जो उस सम्पूर्ण राजवंश, मानव समाज और राष्ट्र के हित, रक्षा और यश के लिए जरूरी है। अन्यथा स्त्री अस्मिता के आहत होने पर मौन रहने वाली राजसभा की भाँति यदि बाद में भी पाण्डवों द्वारा मौन धारण कर लिया जाता और इसका प्रतिकार न किया जाता, तो यह सदैव के लिए अधर्म, अन्याय और अमानवीयता की स्थापना करने वाला घोर कर्म बनता तथा सम्पूर्ण समाज और राष्ट्र अपमानित द्रौपदी की आह! से निःसृत ज्वाला में भस्मीभूत हो जाता।

अतः निःसन्देह यह रणयज्ञ जरूरी था और इसीलिए अधर्म की समाप्ति व धर्म की स्थापना व रक्षा की दृष्टि से यह युद्ध नहीं, बल्कि युद्ध के रूप में यज्ञ था। इस यज्ञ की पृष्ठभूमि में द्रौपदी तथा भीम का क्रोध और उनकी प्रतिज्ञा ही सर्वप्रमुख रही, जिनके चलते इस रणयज्ञ का आयोजन सम्भव हो सका और यज्ञ की सफलता सम्भव हो सकी। अन्यथा उदासीनता से तो द्रौपदी की अस्मिता की

रक्षा कदापि सम्भव न थी। इसीलिए द्रौपदी सदैव पाण्डवों, विशेषकर भीम व अर्जुन को अपने साथ हुए अन्याय व अपमान का निस्तारण करने हेतु बार-बार प्रेरित व उद्दीप्त करती है। वह भीमसेन से स्पष्ट कहती है- ''नाथ! उदासीनेषु युष्मासु मम मन्युः न पुनः कुपितेषु।''[6] ''अर्थात् नाथ! आपके उदासीन होने पर मुझे क्रोध होता है, कुपित होने पर नहीं।''

द्रौपदी एवं भीम का क्रोध और अपमान प्रक्षालन का दृढ़ संकल्प ही सम्पूर्ण नाटक को वह मजबूत आधार प्रदान करता है, जिस पर महाफलदायी महायज्ञ का आगाज व आयोजन एवं सफल परिणति का विन्यास हुआ है। भीमसेन के क्रोध और द्रौपदी के खुले केश व उद्दीपक वचनों ने उस क्रोध को उद्दीप्त करके यह आश्वस्त कर दिया कि फलप्राप्ति निश्चित है। इसीलिए तो दुर्योधनादि कौरवों के प्रति भीमसेन के क्रोध पर प्रसन्नता व्यक्त करती हुई द्रौपदी से भीम कहते हैं कि समझ लो तुम्हारे अपमान का बदला ले लिया गया - ''यद्येवमपगत-परिभवमात्मानं समर्थयस्व''।[7] क्रोध से सराबोर भीम- प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञापूर्ति हेतु किये जाने वाले घोरकर्म और उसके फल को व्यक्त करते हुए द्रौपदी से कहते हैं-

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानापविद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः।।[8]

अर्थात् ''हे देवि! चपल भुजाओं द्वारा घुमाई गई गदा के प्रहारों से चूर-चूर हुई दोनों जङ्घाओं वाले दुर्योधन के चिकने, चिपके हुए तथा गाढ़े रुधिर से लाल हाथों वाला यह भीम तुम्हारे केशों को सँवारेगा।''

वासुदेव श्रीकृष्ण तथा भीम के अन्य भाई भी इस कार्य में उसके साथ हैं। स्वयं द्रौपदी तथा माता कुन्ती की मंगल कामनाएँ उनके साथ हैं।[9]

एक ओर द्रौपदी को अपने मान-सम्मान एवं अस्मिता पर लगे कलंक को धोने की तीव्र कामना है, तो वहीं दूसरी ओर उस स्वाभिमानिनी नारी को युद्ध हेतु प्रस्थान कर रहे अपने पाण्डव पतियों की भी चिन्ता है। अतः इस हेतु रणक्षेत्र में प्रस्थान करने को उद्धत हुए भीमादि से द्रौपदी कहती है कि - ''स्वामी! आप लोग युद्ध से लौटकर मुझे फिर से आश्वस्त करें।''[10] इस पर भीम कहते हैं कि यदि कौरवों

का संहार न कर सका, तो पुनः तुम्हें अपना मुहँ नहीं दिखाऊँगा।[11] तब द्रौपदी कहती है कि ''मुझ याज्ञसेनी के तिरस्कार के कारण प्रज्वलित क्रोधाग्नि वाले आप लोग अपने शरीर की उपेक्षा करके युद्ध में विचरण न करेंगे; क्योंकि बहुत सावधानी के साथ शत्रुसैन्य के बीच विचरण करना चाहिए- ऐसा सुना जाता है।''[12] इस प्रकार उस स्वाभिमानिनी नारी के लिए अपना स्वाभिमान भी प्रिय व अपरिहार्य है, तो पतियों का शुभमंगल भी वह चाहती है। सम्भवतः एक स्त्री के लिए उसके स्वाभिमान तथा पति से बढ़कर अन्य कोई गौरव व चेतना का आधार नहीं; क्योंकि आत्मसम्मान तथा प्राणेश्वर पति का घात - ये दोनों ही बातें उसे झकझोर व तोड़कर रख देती हैं, चेतनाशून्य सा बना देती हैं। यही भारतीय समाज और संस्कृति में नारी की प्रकृति व प्रवृत्ति का उत्कर्ष एवं वैशिष्ट्य है। तो दूसरी ओर भीम को भी स्वाभिमानविहीन वह जीवन स्वीकार नहीं, जिसमें वह अपनी पत्नी को सम्मान से जीने का अधिकार व परिवेश सृजित न कर सकें। इसीलिए उसकी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि यदि द्रौपदी के अपमान का बदला लेने हेतु की गई प्रतिज्ञा को वह पूरा न कर सके, तो स्वप्राणघात कर लेंगे।[13] परन्तु चूँकि भीम द्रौपदी के अपमान से आहत हैं तथा वे एक स्त्री की मान-मर्यादा व आत्मसम्मान को भलीभाँति समझते हैं, अतः पूर्ण विश्वास और संकल्प के साथ रण में भी उतरते हैं तथा भीम के क्रोध व दृढ़ प्रतिज्ञा को देखकर उसके भय से जलाशय में छिपे हुए दुर्योधन को खोजकर उससे गदायुद्ध करते हैं और अन्त में दुर्योधन की जङ्घा को तोड़कर अपने ध्येय में भी सफल होते हैं।[14] देखें, नाटक में सिद्ध मनोरथ होकर रण से लौटे हुए भीमसेन की उपस्थिति - ''ततः प्रविशति गदापाणिः क्षतजसिक्तसर्वाङ्गो भीमसेनः।''[15] अर्थात् दुर्योधन का वध करके हाथ में गदा लिए हुए रक्त से लिप्त हुए सभी अंगों वाले भीमसेन का प्रवेश होता है, तो यह द्रौपदी के वेणीबंधनरूप फलप्राप्ति के सन्निकट है; अर्थात् अब भीम के द्वारा द्रौपदी की वेणी सँवारने का समय आ चुका है। यह मात्र उसके केश सँवारने या वेणी बाँधने का कार्य नहीं, वरन् द्रौपदी के अपमान प्रक्षालन, उसकी दुर्दशा का प्रतिशोध, स्वाभिमान की रक्षा तथा वजूद एवं वर्चस्व की स्थापना है। अतः भीमसेन स्वयं उसके केशों को सँवारते हैं। वे कहते हैं- ''पाञ्चालि न खलु मयि जीवति संहर्तव्या दुःशासनविलुलिता वेणिरात्मपाणिभ्याम्। तिष्ठतु तिष्ठतु। स्वयमेवाहं संहरामि।''[16] अर्थात् ''हे पाञ्चालि! मेरे जीवित रहते

दुःशासन द्वारा बिगाड़ी गई वेणी को अपने हाथ से नहीं सँवारोगी। ठहरो, ठहरो। मैं स्वयं ही सँवारता हूँ।" इस प्रकार मुख्य कार्य एवं फल की प्राप्ति अभी बाकी है; क्योंकि द्रौपदी का अपमान प्रक्षालन तभी होगा, जबकि उसके खुले केशपाश, जिन्हें खींचकर उसे अपमानित किया गया था, वे सँवार दिए जाएँगे। अतः भीमसेन युधिष्ठिर से कहते हैं कि - "बहुत बड़ा कार्य शेष रह गया है। दुर्योधन के रक्त से सने इस हाथ से पाञ्चाली के केशपाश को, जिसे दुःशासन ने खींचा था, सँवार लूँ।"[17]

नाटक में द्रौपदी की वेणी सँवारने को एक महोत्सव के रूप में माना गया है। तभी तो युधिष्ठिर भीम से कहते हैं- "गच्छतु भवान्। अनुभवतु तपस्विनी वेणीसंहार-महोत्सवम्।"[18] अर्थात् "आप जाइये। वह तपस्विनी (द्रौपदी) वेणीसंहार के महोत्सव का अनुभव करे।" यहाँ द्रौपदी को तपस्विनी कहा गया है। वास्तव में यह उसका महान् तप ही था, जो उसने वर्षों तक अपने केशों को खुला रखा, सँवारा नहीं। वह भी सधवा और सौभाग्यवती नारी होने पर भी; जबकि तत्काल में विधवा स्त्रियों के लिए खुले केशों का विधान होता था।[19] नाटक में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। क्योंकि द्रौपदी के द्वारा ऐसी कोई प्रतिज्ञा न करने अथवा उस प्रतिज्ञा के पूर्ण होने से पहले ही केश सँवारने का मतलब होता कि उसने अपने स्वाभिमान के साथ समझौता कर लिया और अपराधियों को खुली हवा दे दी कि वे इस प्रकार के दुराचारों के लिए स्वतंत्र हैं। ऐसी घटनाएँ व परिस्थितियाँ केवल द्रौपदी ही नहीं, वरन् न जाने समाज में कितने पुरुषों के द्वारा कितनी स्त्रियों के साथ घटित हो सकती थीं, बन सकती थीं। परन्तु द्रौपदी को अपना स्वाभिमान प्रिय था, केशों का अलंकरण या श्रृंगार नहीं। उसके लिए तो सबसे बड़ा अलंकरण उसकी अस्मिता की रक्षा थी, उसका आत्मसम्मान था। इसीलिए वह तब तक तपोरत रही, जब तक कि ध्येय सिद्ध नहीं हो गया। भीम व द्रौपदी की प्रतिज्ञाएँ और संकल्प पूरा होने पर फलप्राप्ति अनन्तर - वेणी सँवारे जाने के बाद अब द्रौपदी अपनी केशसज्जा और सँवरणरूप अलंकरण पर प्रसन्न है। यह प्रसन्नता वास्तव में वेणीबंधन या केशालंकरण की नहीं, यह तो प्रतीक मात्र है; वास्तव में प्रसन्नता और गर्व तो स्वयं द्रौपदी को भी तथा भीमादि पाण्डवों को भी स्त्री अस्मिता की रक्षा पर है। जिसके लिए रणयज्ञ का आयोजन किया गया और वह यज्ञ पूर्ण फलदायी

सिद्ध हुआ। इसीलिए सब लोगों के लिए यह अवसर बधाई का बन पड़ा है।[20] आकाशचारी सिद्ध जन भी द्रौपदी के केशों को वेणी के रूप में सँवारे जाने का अभिनन्दन कर रहे हैं।[21] यह बधाई, अभिनन्दन एवं प्रसन्नता वास्तव में स्त्री के तिरस्काररूपी समुद्र को पार करने तथा दुराचारियों को दण्डित करने[22] की है। इस प्रकार 'वेणीसंहार' आद्योपान्त स्त्री अस्मिता को लेकर रचा गया नाटक है; जो स्वनामानुसार सार्थकता सिद्ध करने वाला है।

'वेणीसंहार' नामक नाटक स्त्री अस्मिता का जयघोष करने वाला वह काव्यभेद है, जो स्त्री के अपमान तथा उसकी दुर्दशा के दुष्परिणामों के साथ एक स्त्री के लिए उसका स्वाभिमान अथवा मान-सम्मान ही सबसे बड़ा अलंकरण एवं गौरव है, इसे भी व्यक्त करता है। नाटक में भीमसेन और द्रौपदी मुख्य रूप से नारी अस्मिता का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे पात्र हैं, जिन्हें किसी भी मूल्य पर स्वाभिमान अथवा मान-सम्मान के साथ समझौता स्वीकार नहीं। इसीलिए उनके प्रयास द्रौपदी के अपमान को धोकर पुनः सम्मानित जीवन जीने तथा समाज को यह दिखाने के लिये हैं कि स्त्री के साथ किया गया दुराचार-दुर्व्यवहार किसी भी पुरुष अथवा मानव समाज के लिए कितना भयावह होता है। अतः अपमानकर्ताओं को दण्डित कर नारी सम्मान की रक्षा करना तथा ऐसी दुःस्थितियों को पुनः सृजित न होना- ये महत्त्वपूर्ण संदेश नाटक के द्वारा प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत नाटक में द्रौपदी सम्पूर्ण नारी जाति की प्रतिनिधिस्वरूपा पात्र हैं; जिनके माध्यम से यह संदेश प्राप्त होता है कि एक स्वाभिमानी स्त्री के लिए उसकी अस्मिता का क्या मूल्य है अर्थात् अस्मिता से बढ़कर कोई दूसरी चीज, वस्तु या भाव उसके लिए महत्त्वपूर्ण नहीं। उसकी रक्षा के लिए उसे पहले स्वयं सशक्त व समर्थ होना होगा तथा आततायियों का विरोध व प्रतिकार करना होगा, ताकि फिर कभी कोई दुराचारी उसके वजूद और वर्चस्व को समाप्त करने अथवा उसके स्वाभिमान को आहत करने का दुःसाहस न कर सके। नाटक का यह भाव और संदेश हर युग, देश और काल में महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि सार्वभौमिक समाज और विश्व में दुर्योधन- दुःशासन जैसे स्त्री अस्मिता के भक्षकों की कमी नहीं। निःसन्देह 'वेणीसंहार' स्त्री अस्मिता के स्वरों की वह गूँज है, जो सार्वभौमिक व सार्वकालिक सुनाई देने वाली है। जैसा कि रचनाकार ने स्वयं लिखा है- ''भूमिवलये

जीयात्प्रबन्धो महान्” अर्थात् मेरा यह (वेणीसंहार नामक) महान् प्रबन्ध भूमण्डल पर जीता-जागता रहे।

संदर्भ -

1. *वेणीसंहार : भट्टनारायण प्रणीत, व्याख्याकार - डॉ. बालगोविन्द झा, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 2010, प्रथम अंक*
2. *वही, प्रथम अंक, पृष्ठ-40 पर गद्य एवं 1/49*
3. *वही, 1/24*
4. *वही, प्रथम अंक, पृष्ठ-53 पर गद्य*
5. *वही, 1/25*
6. *वही, 1/17 के बाद गद्य, पृष्ठ-39*
7. *वही, 1/17 के बाद गद्य, पृष्ठ-40*
8. *वही, 1/21*
9. *वही, 1/25 के बाद गद्य, पृष्ठ-56*
10. *वही, 1/25 के बाद गद्य, पृष्ठ-56*
11. *वही, 1/26 - ‘‘भूय परिभव .... न पश्यसि वृकोदरम्।।”*
12. *वही, 1/26 के बाद गद्य, पृष्ठ-57*
13. *वही, 1/26*
14. *वही, पृष्ठ 313 एवं 333 - ‘‘दुर्योधनोरुस्तम्भङ्गविनिश्चितविजयस्य”।*
15. *वही, 6/36 के बाद गद्य, पृष्ठ-385*
16. *वही, 6/37 के बाद गद्य, पृष्ठ-388*
17. *वही, 6/40 के बाद गद्य, पृष्ठ-394, 397 ”भीमसेनो वेणीं बध्नाति”।*
18. *वही, 6/40 के बाद गद्य, पृष्ठ-394, एवं 6/12 - ‘‘कृष्णाऽत्यन्तचिरोज्झिते च कवरीबन्धे करोतु क्षणम्।”*
19. *वही, प्रथम अंक, पृष्ठ-45 पर गद्य से ज्ञात एवं 6/42*
20. *वही, षष्ठ अंक, पृष्ठ, 390, 394*
21. *वही, 6/42 के बाद पृष्ठ-398 पर गद्य*
22. *वही, 6/45 - ‘‘पाञ्चाल्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकारार्णवः।”*

7

वेणीसंहार में आर्थिक चिंतन

गट्टूलाल पाटीदार

वेणीसंहार नाटक में भट्टनारायण के समय की अर्थनीतियों एवं अर्थचिंतन की परम्पराओं का प्रगटीकरण प्रस्तुत है। जिसमें उस समय आय के स्त्रोत, व्यवसाय, रोजगार, व्यापार, वाणिज्य, कृषि, पशुपालन एवं आजीविका उद्घाटित किया गया है। यहाँ वेणीसंहार में अर्थ व्यवस्था, आर्थिक नीतियाँ, आजीविका का आधार, कृषि - वाणिज्य की स्थिति, धन की गति, उपहार, भेंट, सेना एवं सेवा में रोजगार के अवसर, कलाओं में कौशल, रोजगार के अवसर, धन प्राप्ति के स्थान, जुआ द्वारा धन संग्रह के संकेत, भवन प्रासाद एवं आमोद प्रमोद में वैभव, तत्कालीन व्यापार एवं उद्योग की स्थिति, आजीविका का माध्यम इत्यादि विषयों पर आर्थिक दृष्टि से चिंतन मनन मंथन करने पर पाया है कि राज्य कल्याण कारक था और प्रजा विविध कलाओं में रोजगारोन्मुख थी। समस्याएं तत्समय भी उपलब्ध थी, पर संतोषी जीवन लब्ध था। उद्यपि नाटक अलग कथा कलेवर अलग स्वाद लिए हुए है, फिर भी सम्पूर्ण नाटक के कथोपकथनों, संवादों एवं उदाहरणों में धन चिंतन के जो भी उद्धरण प्राप्त होते है उसको यहाँ आर्थिक चिंतन की दृष्टि से देखने का श्रमपूर्वक प्रयास किया है।

वेणीसंहार में आजीविका का आधार

नाटक में भीमसेन का कथन है कि- ''विराटस्यावासे स्थितमनुचिता-रम्भनिभृतम्''[2] अज्ञातवास के समय राजा विराट के यहाँ विभिन्न प्रकार के उद्योगों को करते हुए समय व्यतीत किया। जिसमें अलग अलग सेवाएं समस्त पाण्डवों द्वारा दी गई। यह प्रमाणित होता है कि विभिन्न सेवाओं, व्यापार एवं उद्योग में कुशलता के आधार पर अवसर प्राप्त था। समस्त पाण्डवों ने कुशलता के आधार पर अलग अलग सेवाएं दी।

जब पाण्डवों ने राजा विराट के यहाँ एक वर्ष अज्ञातवास में रसोईया, गोरक्षक आदि रूप में कार्य किया था और उन सभी ने वल्कल धारण किये हुये थे, बहेलियों के साथ जंगल में लम्बे समय तक निवास किया था। विभिन्न आजीविकाओं को प्राप्त हुए पाण्डवों ने अपनी जीविका का निर्वहण किया, यथा-

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पांचालतनयां,
वने व्याधैः सार्द्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः।
विराटतस्यायवासे स्थितमनुचितारम्भिनिभृतं
गुरुः खेदं खिन्न मयि भजति नाद्यापि कुरुषु।।[3]

यहाँ राजा विराट के पास पाण्डवों ने जो व्यापार एवं आजीविका प्राप्त की उसके संकेत प्राप्त होते है। जुआ सिखाने, भोजन बनाने, संगीत सिखाने, घुड़सवारी सिखाने, सेवा कर्म में जीविका, गोरक्षक एवं गोपालन में जीविका इत्यादि व्यवसाय एवं सेवा में पांडवों को जीविका प्राप्त हुई। ये सारे जीविकोपार्जन के व्यवसाय आज भी समाज में प्रचलित एवं महत्वपूर्ण है।

अर्थ रक्षण में पराक्रम एवं उत्साह सर्वोपरि

वेणीसंहार नाटक में द्रौपदी पाण्डवों से कहती है कि आप लोग अपने शरीर की उपेक्षा कर युद्ध में मत घूमिये, क्योंणकि शत्रुओं की सेना में सावधानी के साथ घूमना चाहियें, ऐसा सुना जाता है। तब भीमसेन कहते है कि द्रौपदी से कि हम लोग युद्ध भूमि में घूमने में समर्थ है, अर्थात् हम पराक्रमी है-

अन्योरन्याकस्फोलभिन्न्द्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कमपंके,
मग्नारनां स्प्न्दनानामुपरितपदन्यासविक्रान्तपतौ।
स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यदत्कयबन्धेम,
संग्रामैकार्णवान्तः पयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुनपुत्रः।।[4]

एक दुसरे से संघर्ष होने से घायल हाथियों के रक्त, चर्बी, मांस, और मस्ताक के कीचड में डूबे हुए और रथों के ऊपर पैर रखकर चलने वाले पराक्रमी पैदल सैनिकों वाले और बह रहे रक्त की पानगोष्ठीऔ में आवाज करने वाली अशुभ सियारिन रूपी तुरहियों की आवाज के साथ नाच रहे कबन्धों (धड़, सिर विहीन शरीर) वाले युद्धरूपी समुद्र के अन्दर जल में घूमने के लिये हम पाण्डव निपुण हैं। वैभव को अर्जित करने का प्रधान माध्यम साहस एवं उत्साह है, और उसी साहस के बल पर पाण्डव युद्ध भूमि में विजयी हुए। अर्जित धन की रक्षा भी पराक्रम से ही की जाती है।

इसी नाटक में लक्ष्मी के विषय में कहते हुए धृतराष्ट्र पंचम अंक में कहते है कि- ''भवति तनय लक्ष्मीः साहसेष्वी–शेषु''[5] इस प्रकार साहस के कार्यों में ही लक्ष्मी रहती है। अर्थात् धन पराक्रम के अधीन ही है। बहुधा युद्ध धन एवं बल के लिए ही किया जाता है।

सेवा एवं सेना में रोजगार एवं आजीविका

नाटक में अक्षौहिणी[6] सेना का उल्लेख कई बार आता है जिसमें 2,18700 सेनिकों की सेना कौरवों की थी ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है अतः अधिक संख्या में सेना की भर्ती होती होगी तथा इसमें रोजगार के अवसर तत्समय उपलब्ध थे। आज की भांति सेना में राजकीय नौकरी उपलब्ध थी। भानुमती ने स्वप्न के अशुभ को शुभ करने के लिये भगवान सुर्य के ओर मुख करके आकाश रूपी सरोवर के अद्वितीय कमल और पूर्व दिशारूपी वधू के मुख आभुषण स्वलरूप कंकुम के तिलक तथा समस्त संसार के लिये एक मात्र रत्न दीपक भानुमती कहती है जो कुछ मेरे स्वप्न में अशुभ हो, वह भगवान के प्रणाम से भाईयों के समेत आर्यपुत्र दुर्योधन के लिए शुभ फल दायक और मंगलकारी हो और वह अन्य देवताओं की पूजा करती है दुर्योधन अपनी पत्नी को कहता है तुम इस प्रकार से दुःखी होगी तो सभी दिशाओ को व्याप्त करने वाली और पृथ्वी को कंपाने वाली हमारी अक्षौहिणी सेना का क्या लाभ है- **''किं नो व्यावप्तदिशां प्रकम्पितभुवामक्षौहिणीनां फलं।।**[7] दुर्योधन अपनी पत्नीक को बताते है हमारे पास अक्षौहिणी सेना है जिसमें हाथी रथ घोडे तथा पैदल सैनिक भी है और कहते है द्रोणाचार्य कर्ण और मेरे सौ भाई भुजा रूपी वन की छाया में तुम सुखपुर्वक बोलने वाली और दुर्योधन रूपी सिंहराज की पत्नी हो तुम्हेंप शंका नहीं करनी चाहिये।

नाटक में सूत्रधार सेवक सहित कुशलता की कामना करता है इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्समय सेवा में अवसर के संकेत प्राप्य है। यथा- सूत्रधार का कथन- ''स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः''[8] नाटक में कंचुकी का कथन है कि ''सेवास्वीकृतजीवितस्य जरसा किं नाम यन्मे कृतम्''[9] सेवा में तो ऐसा ही करना पड़ता है। यहाँ राजकीय कार्य में सेवा का उल्लेख हुआ है। राजकीय कार्य में आजीविका का अवकाश उपलब्ध था। तथा सहभृत्यगणम्[10] कह कर यहाँ भृत्य वर्ग का उल्लेख हुआ है। इससे स्पष्ट है की सेवा एवं सेना में पर्याप्त रोजगार उपलब्ध था। तत्समय कृषि एवं पशुपालन के बाद राजकीय सेवा में रोजगार प्रधान रूप से प्राप्त था।

उपहार स्वरुप धन की प्राप्ति के संकेत

जब पाण्डवों में भीम ने प्रतिज्ञा ली की मैं दुर्योधन का वध कर दूंगा तब दुर्योधन जल में छुप जाता है। उस समय दुर्योधन को जो भी ढुंढेगा उसे युधिष्ठिर धन और उपहार देगा। यथा-

पंके वा सैकते वा सुनिभृतपदवी वेदिनो यान्तु दाशाः,
कंजेषु क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचया बल्लवाः संचरन्तु।
व्याधाव्याघ्राटवीषु स्वपरचपुरविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञा,
ये सिद्धव्यंयजना वा प्रतिमुनिनिलयं ते च चाराश्वरन्तु।।[11]

राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन की खोज के लिये सभी गुप्त स्थानों पर खोजने के लिए अलग अलग कलाओं में कुशल गुप्तचरों को भेजने की आज्ञा दी, जो व्यक्ति जिस जिस स्थानों के बारे में जानता है। उसे वहाँ वहाँ जाने की आज्ञा युधिष्ठिर के द्वारा की दी गई। इससे हर कार्य में कुशल व्यक्ति एवं उसकी कुशलता का भी परिचय दिया गया है। व्यक्ति की कार्यकुशलता के अनुसार रोजगार प्राप्ति के संकेत प्राप्त होते है।

राज्य समृद्धि एवं वैभव

जब भीम को दुर्योधन मिल जाता है तब दोंनों के बीच युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। श्रीकृष्ण ने कहा कि- मंगलकार्यों को लगातार प्रारम्भ करिये और कहा कि राज्याकभिषेक के लिये रत्नों के कलशों को जल से भरा जाए। और लम्बे समय से छोड़ दिये गये, केशपाशों के बन्धन के विषय में द्रौपदी उत्सव को मनावें। पाण्डवों ने कौरवों का पक्षपात करने के लिए प्राणरूपी धनराशी को दांव पर लगा दिया था। जैसे कहा है– ''प्राणद्रविणसंचयाः।''[12] सारथी राजा के रथ वैभव का वर्णन करते हुए कहता है कि- ''धवलचपलचारुचामरचुम्बितकनककमण्डुला''[13] अर्थात् सफेद चपल और सुन्दकर चंवर से सुसज्जित सुवर्ण शिखर वाले और शिखर पर बाँधी गयी पताका है। राज्य वैभव एवं राज्यश्री का पता चलता है। दुर्योधन धनुर्धारी राजा था और सम्मागन को ही धन मानता था।

षष्ठ अंक दुर्योधन को ढूढने का प्रसंग आता है तो युधिष्ठिर सुसचिव[14] शब्द का प्रयोग करते है तथा इनाम की घोषणा की भी बात करते है[15] जिससे स्पष्ट है कि सचिव योग्य थे तथा राज्य वैभव से पूर्ण था। इसी अंक में राक्षस को जल पिलाने के लिए भृंगार[16] (स्वर्ण जल पात्र) का वर्णन किया है। तत्समय स्वर्ण पात्रों में

जल पिलाने का संकेत भी प्राप्त होता है, जिससे भी राज्य समृद्धि का आभास होता है।

भवन, प्रासाद एवं आमोद प्रमोद में धन वैभव

नाटक में कई उद्धरणों में उद्यानों, महलों, भवनों, निर्माणों, साज-सज्जा एवं आमोद प्रमोद में वैभवशालीता के साथ धन वैभव के प्रमाण मिलते है उससे उस समय के भवन निर्माण एवं उद्यान निर्माण एवं मनोरंजन विहार में बहुत अधिक धन खर्च किया जाता था ऐसा प्रतीत होता है जैसे- बालोद्यान[17] एवं दारुपर्वत प्रासाद[18] इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है। एक स्थान पर महाराज दुर्योधन के रथ के वैभव का वर्णन करते हुए चंचल स्वर्ण क्षुद्र घंटियों से युक्त रथ को बताया है।[19] आर्थिक समृद्धि का संकेत है जहां रथ आदि को भी स्वर्ण से सजाया जाता था। इससे सिद्ध है कि देश राज्यश्री एवं राज्यलक्ष्मी से लब्धप्रतिष्ठित था।

जुआ द्वारा धन संग्रह के संकेत

नाटक में सूत्रधार और पारिपार्श्विक के संवादों के मध्य भीमसेन का कथन आता है कि उस समय कौरवों द्वारा जुआ आदि क्रियाओं द्वारा पांडवों द्वारा अर्जित धन के संग्रह पर आक्रमण किया गया। इस प्रकार धन के लिए छल कपट, उस समय भी होता था जो आज भी जुआ और सट्टा का खेल कई लोगों द्वारा खेला जाता है। उद्धरण उपलब्ध है- ''प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य''[20] इत्यादि उद्धहरण से सिद्ध है। तथा जुआ खेलने का और भी प्रमाण प्रथम अंक में मिलता है, यथा-

यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः।
दीव्यताऽक्षैस्तदोनेन नूनं तदपि हारितम्।।[21]

पांसों द्वारा जुआ खेलते हुए युधिष्ठिर सब कुछ द्युतक्रीड़ा में हार गए। जुए में धन का नाश होता है। एक जगह कहा गया है कि- द्यूतारणि[22] जुआ रूपी अरणि में भरी हुई। अतः जुआ खेलने के बाजार उस समय भी उपलब्ध थे। और आज भी कई होटलों एवं देशों में ऐसा व्यापार होता है। जुए का एक वृहद् व्यापार आज भी है, तथा बाजार का रूप ले चुका है।

आजीवका के लिए पांच गाँव के साथ संधि प्रस्ताव

''सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन''[23] युधिष्ठिर पाँच गाँव के मूल्य से कौरवों के साथ सन्धि करेंगे। गाँव के उपज से कर लिया जाता था। उससे आजीविका का निर्वहण किया जाता था। इसी लिए नाटक में श्रीकृष्ण संधि प्रस्ताव

लेकर जाते है और पाण्डवों के लिए पाँच गाँव मांगे गए थे। एक उद्धरण में कहा गया है कि- ''पञ्चग्रामाः प्रार्थ्यन्त इति श्रूयते''[24] पाँच गाँव मांगे जा रहें है।

कलाओं में रोजगार के अवसर एवं जीविका

वेणीसंहार नाटक के आरम्भ में ही सूत्रधार संगीत आरम्भ की बात कहता हुआ सुनाई देता है जैसे कहा है- ''शरत्समयामाश्रित्य प्रवर्त्यता संगीतकम''[25] उस समय विभिन्न कलाओं में रोजगार उपलब्ध था। संगीत के साथ विभिन्न वाद्य भी बजाये जाते थे उसका भी उल्लेख मिलता है। शंखनाद सिंहनाद युद्धोत्सव के समय होता था उसमें बाजों को भी बजाय जाता था उसका का भी उल्लेख आता है। यथा- ''दुन्दुभिस्ताडितोऽयम''[26] यह भेरी बाजा किसने बाजा दिया इस कला में भी रोजगार प्राप्त था। यह बाजा युद्ध में बजाय जाता है। एक प्रसंग में भानुमती का स्वप्न संगीत की शब्द ध्वनि से खुल गया[27] अर्थात् प्रातः वेला में भी संगीत बजाया जाता था इस प्रकार तत्समय में विभिन्न कलाओं में रोजगार सुलभ था।

संगीत का प्रारम्भ करने के लिये सूत्रधार कहता है कि शरद ऋतु में करना चाहिये। क्यों कि चांदनी, नक्षत्र, गृह क्रोंचपक्षी, हंस समूह, सप्तपर्ण के फूल, कुमुद, कमल और काश के फूलों के पराग से सफेद दिशाओं वाले तथा मधुर जल और जलाशय से युक्तर है। यथा-

सप्तक्षा मधुर गिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाकः
निपतन्ति धार्तराष्टाः कालवशान्मेदिनी पृष्ठे।।[28]

सुन्दर पंखोवाले मधुरवाणी वाले और दिशाओ को अलंकरण करने वाले तथा आनंद के कारण से उद्धत व्याापार वाले हंस पृथ्वी पर उतर रहे है। हंस वर्षा ऋतु में मानसरोवर चले जाते है और शरद ऋतु आने पर वह पुन अपने स्थान पर लोट आते है। यहाँ पक्षियों के वैभव के साथ संगीत कला के महत्त्व को एवं उसमें आजीविका का वर्णन किया है। तत्समय अधिकतर जीविका का आधार कलाएं ही थी। आज भी सर्वकार कलाओं में कौशल की बात करता है।

दान का महत्त्व

उस समय शकुन को भी मानते थे। युधिष्ठिर की जब दाहिनी आँख के फड़कने पर युधिष्ठिर द्रौपदी को शुभ शकुन के बारे में बताते है ओर कहते है कि मुझे शुभ शकुन कह रहे है कि तुम भीमसेन को प्राप्त करोगी। शुभ और अशुभ को भी मानते थे जब दुर्योधन की पत्नी भानुमती को स्वप्न देखा था जो अशुभ स्वप्न

था उस स्वप्न के बारे में भानुमती दुःखी हो जाती है, उसे लगता है कि स्वप्न दर्शन अमंगलसूचन प्रतीत हो रहा है तो वह सखी से बात करती है और भानुमती स्वप्न के बारे में बताती है और उसकी सखी ने कहा की स्वप्न के अशुभ को शुभ बनाते है। देवताओं की स्तुति और दधि- दूर्वा[29] आदि के शुभ पदार्थ के स्पर्श या दान के द्वारा अशुभ फल को दूर कर शुभ फल वाले होते है। देवताओं की पूजा एवं दान के द्वारा अशुभ निवारण का संकेत मिलता है तथा दान के द्वारा अमंगल का नाश बताया है। धन की श्रेष्ठ गति दान ही है।

राज्यश्री प्राप्ति के लिए युद्ध रूपी यज्ञ

यह नाटक राज्यश्री को प्राप्त करने के लिए एवं राज्य की प्राप्ति के लिए ही लिखा गया है। उस राज्यश्री की प्राप्त का मार्ग युद्ध एवं पराक्रम ही है। इसीलिए युद्ध रूपी यज्ञ कर्म किया गया है। यज्ञ में आचार्य ने यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को ऋत्विक कहा जाता है। इस नाटक में पाण्डवों के चार भाई को ऋत्विक कहा गया है और भगवान श्रीकृष्णव यज्ञकर्म का उपदेश देने वाले आचार्य है और राजा युधिष्ठिर युद्धरूपी यज्ञ में दीक्षा लिए हुए यजमान है। व्रतधारण की हुई द्रौपदी के अपमान के दुःख का नाश यज्ञ का फल होगा। राजा को निमंत्रित करने के लिए यशरूपी नगाड़ा जोर से बज रहे है।[30] ऐसा उल्लेख प्रथम अंक में मिलता है तथा द्रौपदी भी सभी पाण्डवों के लिए मंगल कामना करती है और माता कुन्ती भी सभी पाण्डवों के लिए कल्यााण की कामना करती है। अंत में नाटक का फल पाण्डवों को राज्यश्री की प्राप्त ही है। संसार में धन कमाने एवं धन रक्षण के लिए ही पराक्रम एवं साहस दिखाना पड़ता है। योगक्षेम का ही चक्र है।

प्रकृति में समृद्धि एवं वैभव

वेणीसंहार नाटक में पाण्डव वंश को ही वृक्ष कहा गया है। पाण्डवो के वंश की शाखाओं का आवरण से भूमण्डल आच्छाादित हो गया है।[31] वंश की दिशाओ को सुशोभित करने वाले और जिसका तना अधिक मोटे कंधो वाले पुरुषों से युक्त और अच्छी तरह से जड़ तक वीरता से बंधा हुआ था पाण्डवों से उस छाया की इच्छा कर रही है और विजय की आशा रख रही है। सरोवर में कमल के स्पर्श से सुगन्धित और ठण्डी हवा से हिल रहे घने पत्तों वाले बरगद के पेड़ है। युद्ध करने से थके हुए वीर लोगों के लिये विश्राम का उचित स्थान है ओर हरिचंदन के समान ही ठण्डा है और सुगन्धित और मूर्छा को दूर करने के लिए भी उचित इस सरोवर की वायु से

थकावट भी दूर हो जाती है। नाटक में प्राप्त वर्णनों से प्रकृति में समृद्धि एवं वैभवता के लक्षण परिलक्षित होते है। वन, प्रकृति एवं इस भूमा से बड़ा संसार का कोई धन नहीं है। जिस व्यक्ति एवं राज्य के पास प्राकृतिक समृद्धि है वह आर्थिक रूप से सक्षम होता ही है।

पशुधन की स्थिति

नाटक के कई प्रसंगों में हाथी घोड़ों को उल्लेख प्राप्त होता है जो सेना में एवं युद्ध में उनका उपयोग किया जाता था तथा नाटक में सूत कहता है कि- ''ह्रेषासंवलितो नेमिध्वनिः श्रूयते''[32] घोड़ों के हिनहिनाहट की आवाज सुनाई पड़ रही है। तत्समय पशुधन प्राप्त एवं सुव्यवस्थित अवस्था में था।

धन का उपभोग

नाटक में दुःशासन वध के बाद दुर्योधन का कथन- ''युक्तो यथेष्ठमुप-भोगसुखेषु नैव''[33] दुर्योधन कहता है कि मेरे कारण ही दुःशासन को उपभोगसुखों को भोगने का समय नहीं दिया गया। सुख भोगने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। व्यक्ति के शरीर के न रहने पर धन का कोई औचित्य नहीं है इसलिए शरीर की रक्षा करनी चाहिए। धन नष्ट होने पर कमाया जा सकता है, पर प्राण नष्ट होने पर पुनः जीवन नहीं जीया जा सकता है- जैसे दुःशासन के। यही बात ''भुक्तै ऐश्वर्याः''[34] अर्थात् ऐश्वर्यों का भोग करने वाले भी बताया गया है। व्यक्ति के द्वारा अर्जित धन का भोग करना चाहिए। न करने पर धन का नाश अवश्य ही होता है।

धन विषयक अन्य संवाद-

नाटक में सुत कह रहा है कि- ''कौरवराजस्य द्यूतनिर्जितो दासः पार्थमध्यमो''[35] कौरवराज का जुए में जीता हुआ सेवक मध्यम पाण्डव भीम के लिए कहा गया है यहाँ सेवक और दास का उल्लेख मिलता है तथा जुए का भी। राजाओं का धन मान ही जैसे कहा गया है- ''राज्ञो मानधनस्य''[36] मान ही जिसका धन है। साधारण सभ्य व्यक्ति भी धन की उपेक्षा मान ही चाहता है। एक प्रसंग में दुर्योधन कहता है कि- ''घतितोशेषबंधोर्मे किं राज्येन वा जयेन वा''[37] अर्थात् अपने समस्त भाइयों को मरवा डालने वाले मुझे अब राज्य अथवा विजय प्राप्त करने से क्या लाभ? धन एवं राज्य की सिद्धि बंधू बांधव के जीवित रहने पर है। यहीं बात ''किं मे राज्येन जयेन वा''[38] का उल्लेख पंचम अंक में भी मिलता है। रत्नजटित मुकुट का वर्णन भी आता है।[39] और स्वर्ण घंटियों के जाल का वर्णन[40] तथा विविधरत्नों की

प्रभा का वर्णन भी प्राप्त होता है।[41] जिससे राज्य एवं राजाओं के धन वैभव का अनुमान लगता है।

निष्कर्ष

वेणीसंहार नाटक का कथानक अलग कलेवर लिए हुए है इसीलिए यहाँ आर्थिक चिंतन के अधिक सूत्र उपलब्ध नहीं होते है परन्तु जहां जहां उपलब्ध है उसका यथा स्थान चिंतन किया गया है। वेणीसंहार में विविध विषयों, संवादों, प्रसंगों, उद्धरणों, सन्दर्भों एवं कथोपकथनों को आर्थिक दृष्टि से देखा गया है जिसमें वेणीसंहार में आजीविका का आधार, अर्थ रक्षण के उपाय, अर्थ प्राप्ति में पराक्रम, सेवा एवं सेना में रोजगार, धन की उपहार स्वरूप प्राप्ती, राज्य समृद्धि एवं वैभवता, भवन प्रासाद एवं आमोद प्रमोद में धन वैभव, जुआ द्वारा धन संग्रह के संकेत, विद्याओं में कौशल, वेणीसंहार में व्यापार एवं उद्योग, कलाओं में रोजगार के अवसर एवं आजीविका, दान का महत्त्व, राज्यश्री प्राप्ति के लिए युद्ध रूपी यज्ञ, प्रकृति में समृद्धि एवं वैभव, पशुधन की स्थिति, क्रीडाउद्यान की सुन्दरता एवं वैभवता, धन का उपभोग एवं धन विषयक अन्य संवाद इत्यादि वर्णन से सिद्ध होता है कि तत्समय धन की अपनी महत्ता थी। जीविका के साधन उपलब्ध थे। राज्य वैभव एवं समृद्धि को प्राप्त था। राज्य की आर्थिक नीतियाँ एवं प्रशासन सुव्यवस्थित अवस्था में था। धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन सर्वोपरि था। पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए लोग जीवन यापन करते थे।

संदर्भ -

1. *वेणीसंहार- नाटकम् -1.5 के पश्चात् गद्य भाग*
2. *वही, 1.11*
3. *वही, 1.11*
4. *वही, 1.27*
5. *वही, 5.21*
6. *वही, 2.17*
7. *वही, अंक द्वितीय श्लोक 17 पृष्ठ 108*
8. *वही, 1.7*
9. *वही, 2.1*
10. *वही, 2.5*
11. *वही, 6.2*
12. *वही, 4.1 से पहले का गद्य भाग*
13. *वही, 4.1 से पहले का गद्य भाग*

14. वही, 6.1 के बाद

15. वेणीसंहार- नाटकम्- 6.1 के बाद

16. वही, 6.13 के बाद

17. वही, 2.1 के बाद

18. वही, 2.20 के बाद

19. वही, 2.29

20. वही, 1.9

21. वही, 1.3

22. वही, 1.24

23. वही, 1.15

24. वही, 1.19 के पश्चात् का गद्य भाग

25. वही, 1.5 के पश्चात् का गद्य भाग

26. वही, 1.22

27. वही, 2.12 के पश्चात् का गद्य भाग

28. वही, 1.6

29. वही, 2.13 के पश्चात्

30. वही, प्रथम अंक, श्लोक- 25

31. वही, पृष्ठ संख्या 352-353

32. वही, 4.14 के पश्चात्

33. वही, 4.6

34. वही, 5.8 के बाद

35. वही, 4.1 पहले

36. वही, 4.1

37. वही, 4.9

38. वही, 5.2 के बाद

39. वही, 4.9 के बाद दुर्योधन सुन्दरक संवाद में

40. वही, 4.9 के बाद दुर्योधन सुन्दरक संवाद में

41. वही, 4.9 के बाद दुर्योधन सुन्दरक संवाद में

8

वेणीसंहार में राजधर्म

सञ्जय कुमार

महाकवि भट्टनारायण प्रणीत वेणीसंहार यद्यपि नाटकीय सिद्धान्तों की दृष्टि से अतिमहत्त्वपूर्ण नाटक माना जाता है लेकिन नाटकीय संविधान के साथ कवि देशकाल से भी जुड़ा होता है। इसलिए उसके रचना में अनेक सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक विषय स्वतः उपस्थित हो जाते हैं। राजधर्म को संस्कृति के अन्तर्गत ही स्वीकार किया जाता है। संस्कृति ही मनुष्य समाज की नियामक और प्रतिष्ठापक होती है। राजधर्म समाज व्यवस्था का अनुशासनात्मक स्वरूप है, जो सत्य और न्याय का पक्ष लेता है और एक व्यवस्थित समाज का स्थापना करता है। उसी का कुछ दृश्य वेणीसंहार में प्राप्त होता है। इस नाटक में राजनीति या राजधर्म की जो उपस्थिति कवि के द्वारा की गयी है उसके केन्द्र में श्रीकृष्ण दिखलाई पड़ते हैं। जिसके सम्बन्ध में भोलाशंकर व्यास का कथन है ''कृष्ण राजनीति में सिद्धहस्त हैं और नाटक के सूत्र का संचालन उन्हीं के हाथ में है। नाटककार ने अन्त में कृष्ण के मुख से 'तत्कथय महाराज किमस्मात्परं समीहितं सम्पादयामि' कहलवा कर शत्रुवध वेणीसंहार और राज्य लाभ का सारा श्रेय कृष्ण को दिया है। यद्यपि कृष्ण और युधिष्ठिर दोनों ही नाटक के केवल छठे अंक में ही मंच पर प्रविष्ट होते हैं पर नाटक की कथा वस्तु इन्हीं दोनों पात्रों को केन्द्र में घूमती जान पड़ती है।''[1] वस्तुतः नाटक के तीन तत्त्व होते हैं- नेता, वस्तु और रस। नेता के अन्तर्गत पात्र योजना को समाहित किया जाता है। सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिवेश का प्रस्तौता पात्र को ही माना जाता है। राजधर्म को वही अपने आचरण और व्यावहार से संवलित करता है। राजधर्म धर्मशास्त्रीय विषय का वह स्वरूप है जिसका प्रकाशन, आर्षकाव्य, कविकाव्य और नाटक आदि सभी करते हैं। वस्तुतः समाज व्यवस्था का जो चिन्तन

वैदिक वाङ्मय में प्रस्फुटित हुआ उसी का व्यावहारिक रूप आर्ष काव्यों में प्रतिपादित किया गया और काव्य या नाटक तो जीवनीय तत्त्व के रूप में सामने आते हैं। यानि जो व्यवहार हमें आर्ष काव्य सिखाते हैं उसी को जीवन में धारण करने का उपदेश काव्य या नाटक करते हैं। क्योंकि कि इन्हें कान्तासम्मिततयोप-देशयुजे भी कहा गया है।[2] यदि हम राजधर्म की बात करें तो इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्र में बहुत अच्छी बात की गयी है-

तस्मात् स्वधर्म भूतानां राजा न व्याभिचारयेत।
स्वधर्म सन्धानो हि प्रेत्य चेह न नन्दति।।[3]

अर्थात् राजा प्रजा को अपने धर्म से च्युत न होने दें। राजा भी अपने धर्म का आचरण करे। जो राजा अपने धर्म का इस भांति आचरण करता है वह इस लोक-परलोक में सुखी रहता है। एक राजा प्रजापालन के धर्म युद्ध में अपनी प्रजा का योग-क्षेम करता है तथा वह सदैव अपनी प्रजा के प्रति उत्तरदायी होता है। इसलिए पुनः आचार्य चाणक्य कहते हैं-

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं प्रियम्।।[4]

अर्थात् प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में उसका हित है। राजा का अपना प्रिय (स्वार्थ) कुछ भी नहीं है। प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है। यही बात महाकवि भवभूति भी उत्तररामचरित में कहते हैं।[5] शुक्रनीति में भी प्रजा पालन धर्म को शुक्राचार्य ने बहुत प्रमुखता से उद्घाटित किया है। उन्होंने कहा है-

नृपस्य परमो धर्मः प्रजानां परिपालनम्।
दुष्टनिग्रहणं नित्यं न नीत्याऽतो विना ह्युभे।।[6]

अर्थात् दुष्ट दमन और प्रजा पालन दोनों ही राजा के नित्य धर्म है, यानि दैनिक कर्त्तव्य हैं। ये दोनों नीतिशास्त्र के ज्ञान के बिना सम्भव नहीं हैं। यदि वेणीसंहार के परिप्रेक्ष्य में इस विषय पर बात की जाय तो दुर्योधन आदि अनीतिमान और पाण्डव नीतिमान दिखलाई पड़ते हैं। इस नाटक का मुख्य कथानक कौरवों की सभा में पाण्डवों तथा द्रोपदी के अपमान को लेकर उपस्थित होता है। यहीं से दुर्योधन के रक्तरंजित हाथों से बेणीबंधन की प्रतिज्ञा भीमसेन के द्वारा की जाती है। इसलिए धर्मशास्त्र की बात हो या राजधर्म की बात हो, सब जगह नीति को मानने,

जानने और समझने का निर्देश हमारे आचार्यों द्वारा दिया गया है। इस सम्बन्ध में आचार्य मनु का भी कथन है कि विनीतात्मा राजा विनय की शिक्षा नित्य ग्रहण करता है तो उसका पतन नहीं होता है। अविनयी होने के कारण अनेक राजा कोष, सेना, वाहनादि के सहित नष्ट हो गये और अनेक विनयी पुरुषों ने वन में रहते हुए भी राज्य प्राप्त कर लिये।[7] यह तथ्य महाभारत के सम्बन्ध में बहुत उपयुक्त लगता है। वेणीसंहार में भी दुर्योधन आदि की अविनयता की गंध पग-पग पर मिलती है। वहीं युधिष्ठिर अपने विनयशील गुणों से सबकुछ प्राप्त करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। इसलिए विनयशील राजा ही अपने यश-कीर्ति को प्रकाशित कर पाता है। बाणभट्ट भी शुकनास के द्वारा जो विनय का उपदेश चन्द्रापीड को दिये हैं। वह भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। प्रत्येक राजा को या राजनेता को कभी भी विनय का परित्याग नहीं करना चाहिए। बल्कि प्रयासपूर्वक विनय को धारण करना चाहिए। अविनय का परिणाम दिखलाते हुए भट्टनारायण नाटक के प्रारम्भ में ही कहते हैं-

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशामदोद्धतारम्भाः।
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे।।[8]

अर्थात् उत्तम सेना अथवा सहायक वाले, मधुरभाषी, दिशाओं को वश में रखने वाले अहंकार के कारण उच्छृंखल आचरण वाले धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि मानो ऐसा लग रहा है कि मृत्यु के कारण भूतल पर मरकर गिर रहे हैं। यद्यपि यह अर्थ प्रकारान्तर से ग्रहण किया जाता है लेकिन इसके मूल में अविनयता ही है, जो कौरवों के समूल नाश का कारण बनती है। इसलिए राजा को कभी भी अहंकार या अविनय प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। राजा, मन्त्री, सेना, दुर्ग, कोश, दण्ड, मित्र आदि ही राजधर्म की नींव मानी जाती है। इनका सयंमन ही राजधर्म का संयमन है, जिसमें राजा प्रमुख है। राजा का प्रमुख कार्य प्रजापालन ही है। भट्टनारायण भी कहते हैं- अवनिमवनिपालाः पान्तु[9] अर्थात् राजा लोग पृथ्वी का पालन करें तथा राजा लोक प्रिय विद्वानों का, बन्धुगुणों का, विशेषज्ञ, सदैव सदाचरण करने वाला और राजमण्डल को नियन्त्रण में रखने वाला हो-

दयित भुवनो विद्वद्बन्धुर्गुणेषु विशेषवित्।
सतत सुकृती भूयाद् भूपः प्रसाधितमण्डलः।।[10]

अर्थात् राजा प्रजानुराग करने वाला हो, विद्वानों का बन्धु, गुणों का

विशेषज्ञ तथा सदाचार करने वाला और राजमण्डल को नियन्त्रण में रखने वाला हो। यहाँ कवि भट्टनारायण के द्वारा बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकाशित किया गया है, जिसमें से राजमण्डल का नियन्त्रण राजा के कार्यों में प्रमुख है। राजा का मन्त्रियों, सेनानायकों और सेवकों पर नियन्त्रण होना चाहिए। राजा प्रजा को पालित-पोषित करके उन्हें नियन्त्रित करता है। लेकिन राजमण्डल को वह अपने योग्यता, अपने न्याय-प्रियता और दण्ड से नियन्त्रित करता है। वेणीसंहार में हम देखते है कि दुर्योधन पर राजा धृतराष्ट्र का कोई नियन्त्रण नहीं है। वह सब जगह अपने उदण्ड व्यक्तित्त्व को ही उपस्थित करता है और भीम भी कम नहीं है। वह बार-बार सन्धि को तोड़ने तथा दुर्योधन के वध करने की बात करता है। नाटक में कहीं-कहीं तो ऐसा भी लगने लगता है कि राजा (नायक) युधिष्ठिर नहीं बल्कि भीम है। अपनी शक्ति के दम्भ और उग्र क्रोध की अभिव्यक्ति करते हुए भीम उद्घोष करता है कि यदि द्रौपदी के अपमान का बदला लिये बिना युधिष्ठिर सन्धि करता है तो मैं उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लूँगा।[11] इस तरह की बातें राजा के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति के द्वारा नहीं की जानी चाहिए। राजा ही राज्य और प्रजा हित का साधक होता है। वह राज्य या प्रजा का हित किस प्रकार करना चाहता है उसके लिए उसे स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। हाँ परामर्श अपेक्षित होता है जिसके लिए मन्त्रि परिषद होती है। कहा क्या उचित है या अनुचित है? इस विषय में मन्त्रि परिषद का परामर्श स्वीकार करना राजा का धर्म है। इस रूप में मन्त्री का स्पष्ट उल्लेख नाटक में नहीं मिलता है। लेकिन नाटक के प्रारम्भ में नीतिज्ञ विदुर के आदेश से नटों को बाजे बजाने की आज्ञा राज्य कर्मचारी दे रहे हैं।[12] साथ ही नाटक में कई स्थलों पर सभा, राजसभा, मन्त्रणा आदि का संकेत प्राप्त होता है। राजधर्म में सैन्य व्यवस्था का विशेष महत्त्व है। सेना के द्वारा ही राजा आन्तरिक और बाह्य रूप से प्रजा को संरक्षित-संबंर्धित करता है। सेना के चार रूप प्राप्त होते हैं- रथ, गज, अश्व और पैदल। वेणीसंहार में इन चारों सेनाओं का उल्लेख भट्टनारायण करते हैं- भो भो द्रुपदविराटवृष्ण्यन्धक सहदेव प्रभृतयोऽस्मदक्षौहिणीपतयः कौरव चमूप्रधान-योधाश्च।[13] अर्थात् अये, अये द्रुपद, विराट, वृष्णि, अन्धक और सहदेव प्रभृति मेरी अक्षौहिणी सेना के नायकों तथा कौरव सेना के अग्रगण्य शूरवीरों, इस प्रकार से सम्बोधन किया गया है। यदि अक्षौहिणी सेना पर विचार किया जाय तो इस

सम्बन्ध में विद्वानों का मानना है कि एक अक्षौहिणी सेना में 109350 पैदल सैनिक तथा 65610 अश्व, 21870 रथ, 8870 हाथी सैनिक आते हैं। महाभारत युद्ध में बताया जाता है कि कौरवों की 11 अक्षौहिणी सेना था और पाण्डवों के पास 07 अक्षौहिणी सेना युद्ध में सम्मिलित थी। सेना का नेतृत्व सेनापति के द्वारा किया जाता था। यहाँ अनेक जगहों पर सेनानायक शब्द का प्रयोग किया गया है।[14] साथ ही अनेक सेनाओं के नाम का भी उल्लेख वेणीसंहार में मिलता है। सेनापति के सम्बन्ध में आचार्य शुक्राचार्य का कथन है-

न वैश्यो न च वै शुद्रःकातरश्च कदाचन।
सेनापतिः शूर एव योज्यः सर्वासु जातिषु।।[15]

अर्थात् वैश्य, शूद्र या कायर को सेनापति कभी नियुक्त नहीं करना चाहिए। किन्तु सभी जातियों में जो वीर एवं सुयोग्य होता है वही सेनापति के पद पर नियुक्त होता है। यानि सामान्य रूप से वैश्य या शूद्र को सेनापति नहीं बनाया जाता है लेकिन यदि वह वीर हो तो किसी भी जाति-वर्ण का हो उसे सेनापति बनाने में कोई हानि नहीं है। यहाँ पर द्रोण को सेनापति के रूप में उल्लेख किया गया है। अश्वस्थामा स्वयं कहता है-

अस्त्राज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे।
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरिगुरोसर्वधन्वीश्वराणाम्।।
कर्णाऽलं संभ्रमेण व्रज कृप समरं मुंच हार्दिक्यशङ्कां।
ताते चापाद्वितीये वहति रणधुरं को भयस्याऽवकाशः।।[16]

अर्थात् शस्त्रों की ज्वाला से व्याप्त शत्रु सेना रूपी सागर के मध्य बडवाग्नि की भांति सफल श्रेष्ठ धनुधारियों के गुरु इन मेरे पिता के सेनानायक के पद पर रहते हुए हे कर्ण! घबराना व्यर्थ है। हे कृपाचार्य युद्ध में जाइये हृदय की शंका को दूर करिये। धनुष के साथ मेरे पिता के द्वारा रण का भार वहन होने पर भय का अवसर कहाँ? बात भी सही जब योग्य और वीर सेनापति नेतृत्व कर रहा होता है तो युद्ध के विषय में शंका व भय नहीं की जानी चाहिए। द्रोण वध के बाद कृपाचार्य अश्वस्थामा को सेना नायक पद पर अभिषेक करना चाहते थे लेकिन अश्वत्थामा यह कहते हुए नकार देता है कि यह विषय अपने अधिकार से बाहर है। अनन्तर कृपाचार्य दुर्योधन से अश्वत्थामा के वीरता और साहस का उल्लेख करते

हुए उसे सेनापति बनाने का परामर्श देते हैं। दुर्योधन मान भी जाता है लेकिन अंगराज कर्ण को ही सेनानायक बनाया जाता है। क्योंकि शस्त्र और शास्त्र में वह सूतपुत्र होने पर भी वह योग्य था। वेणीसंहार में धनुष, गदा, तलवार, गंडासे, भाला, बर्छियों का अस्त्र-शस्त्रों के रूप में उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार दुर्ग, कोश, दण्ड का भी संकेत यहाँ पर मिलता है। कौरव और पाण्डव के मध्य युद्ध में अनेक मित्र राजा भी सम्मिलित हुए थे ऐसा भट्टनारायण के द्वारा कहा गया है। वेणीसंहार यद्यपि युद्ध और घात-प्रतिघात से भरा नाटक है लेकिन राजधर्म के अनेक विषयों बहुत सम्यक् प्रकार से यह उपस्थित करता है। राजधर्म ने सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव का विशेष महत्त्व होता है। जिसके विषय में शुक्रनीति में कहा गया है-

सन्धिं च विग्रहं यानमासनं च समाश्रयम्।
द्वैधीभावं च संविधान्मंत्रस्यैतांस्तु षड्गुणान्।।[17]

अर्थात् युद्ध काल उपस्थित होने पर विरोधी राजा के साथ मेल-जोल कर लेने को सन्धि, विपरीत आचरण से विरोध प्रकट को विग्रह, दुश्मन पर चढ़ाई करने को यान, दुश्मन के किले को घेरकर रहना आसन, किसी को पीड़ित होने पर दूसरे उससे प्रबल का शरणागत होना समाश्रय तथा फूट डालकर विजय पाना इन छः मन्त्रणा के गुणों का बोध होना चाहिए। यहाँ पर सन्धि प्रस्ताव को विशेष रूप से बतलाना चाहता हूँ। नाटक के प्रारम्भ में भीमसेन और सहदेव के वार्तालाप से पता चलता है कि कृष्ण कौरवों के समीप सन्धि प्रस्ताव लेकर गये हैं। भीम और सहदेव सन्धि के होने या न होने की प्रतिज्ञा कर रहे हैं। लेकिन अपनी शक्ति के दम्भ और उग्र क्रोध की अभिव्यक्ति करते हुए भीम उद्घोष करते हैं कि यदि द्रौपदी के अपमान का बदला लिये बिना युधिष्ठिर सन्धि करते हैं तो मैं उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर लूंगा-

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्, दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु, सन्धिं करोतु भवतां नृपति पणेन।।[18]

अर्थात् क्या मैं क्रोधवश संग्राम में सौ कौरवों का मर्दन नहीं करुंगा, दुःशासन के वक्षःस्थल के रक्त का पान नहीं करुंगा, गदा से दुर्योधन की जाँघों का चूर्ण नहीं बना डालूँगा? आपका राजा युधिष्ठिर शर्त से सन्धि कर ले लेकिन मैं नहीं करुंगा। अन्त में कृष्ण के पांच ग्राम इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त और वारणावत

तथा एक पांचवें ग्राम के रूप में सन्धि की मांग की जाती है। लेकिन दुर्योधन स्वीकार नहीं करता है।[19] सन्धि की बात नाटक के अन्तिम पड़ाव में भी देखने को मिलती है। जब दुःशासन का वध हो चुका होता है और कौरवों की हार लगभग निश्चित लगने लगती है। तब संजय के साथ वयोवृद्ध दम्पत्ति-गांधारी और धृतराष्ट्र दुर्योधन को सन्धि करने के लिए प्रेरित करते हैं परन्तु वहाँ भी दुर्योधन सन्धि करने से इन्कार कर देता है। गांधारी उसे युद्ध न करने की सलाह देती है। वह कहती है कि मैं चाहती हूँ कि तुम जीवित रहो। अब युद्ध का समय नहीं है। मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ। पुनः धृतराष्ट्र भी कहता है-

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत्फाल्गुनात्।
वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शेषप्रतिज्ञोऽधुनाः।
मानं वैरिषु मुञ्च तात पितरावन्धाविमौ पालय।।[20]

अर्थात् जिनके बल पर बान्धवों की गणना नहीं की वे द्रोणाचार्य और भीष्म मारे गये। कर्ण के पुत्र को सबके आगे मारने वाले अर्जुन से संसार भयभीत है। मेरे पुत्रों के विनाश से भीम अब तुम्हारे विषय में अवशिष्ट प्रतिज्ञा वाला है। अतः शत्रुओं के प्रति अभिमान का परित्याग कर इन नेत्रहीन माता-पिता का पालन करो। जिस पर दुर्योधन कहता है कि माता स्नेह के कारण ऐसी सन्धि करने के लिए कह रही है और संजय अपने मूर्खता के कारण लेकिन आपको कैसे विभ्रम हो गया। पुत्रों के नाश होने पर हृदय का ज्वार आपको प्रभावित कर रहा है। जब हम सौ भाई थे तब कृष्ण शान्ति प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। अब सबके विनाश हो जाने पर स्वयं के लिए मैं सन्धि नहीं कर सकता हूँ। यह मेरे लिए लज्जा जनक है। मैं अकेले ही पृथ्वी को पाण्डवों से शून्य कर दूंगा। इस प्रकार यहाँ भी सन्धि नहीं होती है।

नाटक में द्रोण वध के समय कर्ण एक बहुत रहस्यमय बात दुर्योधन से करता है कि वस्तुतः द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा को राजा बनाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने पाण्डवों का वध नहीं किया और शस्त्र का त्याग कर दिया। इस विषय में भट्टनारायण ने लिखा है- एवं किलास्याभिप्रायो यथऽश्वत्थामा मया पृथिवीराज्येऽभिषेक्तव्य इति। तस्याभावाद् वृद्धस्य मे ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्र ग्रहणमिति तथा कृतवान्।[21] अर्थात् आचार्य द्रोण का अभिप्राय यह था कि

अश्वत्थामा को मैं पृथ्वी के राज्य में अभिषिक्त करुंगा। किन्तु इस मनोरथ की सिद्धि न होने से मुझ वृद्ध ब्राह्मण के लिए शस्त्र ग्रहण निरर्थक है। यह समझकर उन्होंने वैसा किया यानि शस्त्र का त्याग कर दिया। जिसके कारण धृष्टद्युम्न उनका वध कर दिया। इसीलिए वे पाण्डवों के वध की उपेक्षा करते रहे। दुर्योधन भी कर्ण के अभिप्राय का समर्थन करता है। कर्ण यह भी कहता है कि ऐसी केवल मेरी धारणा नहीं है बल्कि नीतिज्ञ पुरुषों का अनुमान भी ऐसा ही है। इस प्रकार राजसत्ता का दाव-पेंच भी यहां वर्णित है। एक-दूसरे का उपकार, अपकार और प्रतिकार करते हुए अपने को राजसत्ता में कैसे स्थापित किया जाय यह भावना इस नाटक में दृष्टिगोचर होती है। वेणीसंहार नाटक में दूत कार्य को बड़े बेजोड़ रूप में भट्टनारायण ने प्रतिपादित किया है। कृष्ण कौरव सभा में दूत बनकर जाते हैं। वे पांच ग्राम के आधार पर सन्धि का प्रस्ताव भी रखते हैं। लेकिन दुर्योधन स्वीकार नहीं करता है। बल्कि कृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयास करता है। दूत के साथ ऐसा वर्ताव हमारे धर्मशास्त्रों में नहीं माना गया है। रावण ने भी हनुमान के साथ कुछ ऐसा ही करने का प्रयास किया था। फलस्वरूप हनुमान अपने पौरुष बल से लंका को जला दिये यहाँ भी कृष्ण दुर्योधन के शिविर से बचने के लिए माया आयुधों का प्रयोग करते हैं। अनन्तर उसके शिविर से सुरक्षित वापस आते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भट्टनारायण कृत वेणीसंहार नाटक में राजधर्म के रूप में राजा, मन्त्री, सेना, युद्ध, सन्धि, कूटनीति, दूत कार्य का वर्णन किया गया है। जिनका उद्देश्य नाटकीय विधानों से प्रजापालन एवं सैन्य व्यवस्था का उद्घाटन करना है। कवि या लेखक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के क्रियान्वयन के लिए ही राजधर्म के तत्त्वों को अपने साहित्य में सम्मिलित करता है और उसी आधार पर अपने समय और परिस्थिति को भी वह अंकित करने का प्रयास करता है। साहित्य सदैव समाज और समयानुकूल ही रचा जाता है जिससे उसकी प्रासंगिकता बनी रहती है।

संदर्भ -

1. *व्यास भोलाशंकर, संस्कृत कवि दर्शन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1994, पृ.277*

2. काव्यप्रकाश, 1/2

3. अर्थशास्त्र, 1/3

4. वही, 1/19

5. उत्तररामचरितम्, 1/12

6. शुक्रनीति, 1/4

7. मनुस्मृति, 7/39-41

8. वेणीसंहार, 1/6

9. वही, 6/47

10. वही, 6/48

11. वही, 1/9

12. वही, 1/ श्लोक 5 के अनन्तर

13. वही, 1/24 के पूर्व

14. वही, 3/16

15. शुक्रनीति, 2/430

16. वेणीसंहार, 3/7

17. शुक्रनीति, 4/7/234

18. वेणीसंहार, 1/15

19. वही, 1/16

20. वही, 5/5

21. वही, 3/28 के अनन्तर

9

वेणीसंहार में वैदिकीय विविध पक्ष

सत्येन्द्र कुमार यादव

वेद को भारतीय ज्ञान का अजस्र स्रोत माना जाता है इसलिए कवियों के काव्य या नाटककार का नाटक उससे अवश्य प्रभावित रहता है। अतः वेदों का भट्टनारायण के नाटक वेणीसंहार पर किस रूप में प्रभाव पड़ा है यही यहाँ उपस्थित किया जा रहा है। वेद में पर्यावरण, वर्ण, आश्रम, युद्ध, राजनीति आदि विषयों को बहुत विस्तार पूर्वक प्रतिपादित किया गया है जिसका प्रभाव महाकवि भट्टनारायण प्रणीत वेणीसंहार पर भी दृष्टिगोचर होता है। साथ ही यह भी परिलक्षित होता है कि भट्टनारायण वैदिक संस्कृति के विविध पक्ष से अवगत और प्रयोक्ता थे क्योंकि नाट्य पंचम वेद के रुप में विख्यात है।

प्रायः सभी नाटककार अपने नाटकों में पर्यावरण चिन्तन व प्रकृति के प्रति चिन्तन किया है किन्तु पर्यावरण पर वृहद् चिन्तन भट्ट नारायण ने अपने वेणीसंहार नाटक में किया है; क्योंकि महाकवि भट्टनारायण ने जैसा अपनी आँखों से देखा है, अनुभव किया है वैसा ही अपने नाटक में दर्शाया है। जहाँ पर प्रकृति ही मनुष्य का रूप धारण करके मंच पर आती है और मंचन करती है। वेणीसंहार नाटक में प्रायः पुष्प, वन, वृक्ष, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नदी, जीव-जन्तु, वन्य-प्राणी ऋतुओं आदि का वर्णन हमें प्राप्त होता हैं जो कि सामूहिक रूप से पर्यावरण चिन्तन ही है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश ये पाँच तत्त्व प्राकृतिक हैं। इन सभी के समष्टि रूप पर्यावरण का मनुष्य के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इसी प्रकार वेणीसंहार नाटक में भी दारुपर्वत, गन्धमादन पर्वत, वन, प्रमदवन, वृक्ष, पुष्प, ऋतु, पृथ्वी, वायु, नदी, तालाब, वन्यप्राणी इत्यादि वाह्य एवं अन्तः प्रकृति का वर्णन मिलता है-

प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः
पुष्पैः समं निपतिता रजनीप्रबुद्धैः।
अर्कांशु भिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्ध
संसूचितानि कमलान्यलयः पतन्ति।।[1]

अर्थात् रात्रि में खिले हुए ओस के कणों से मिश्रित पुष्प रस से एक तरफ झुके हुए कोश वाले या अधखिली कली वाले पुष्पों के साथ गिरे हुए भौरे सूर्य की किरणों से खिली हुई कलियों के मध्य भाग के तीव्र गन्ध के कारण दूर से ही मालूम पड़ने वाले कमलों पर गिर रहे हैं।

भट्टनारायण अन्तःप्रकृति एवं वाह्य प्रकृति के चित्रण में अत्यन्त निपुण है। उनके नाटक में न केवल साहित्यिक बल्कि पर्यावरण एवं प्रकृति की दृष्टि से विशेष महत्व है। वैदिक साहित्य का वेणीसंहार नाटक पर पर्यावरण एवं प्रकृति की दृष्टि से अत्यधिक प्रभाव है।

युद्धकला :-

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कौपाद् दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन।।[2]

अर्थात् मैं संग्राम में क्रोधवश सौ कौरवों के समूह को नहीं विनष्ट कर डालूंगा? दुःशासन के वक्षस्थल से रक्त को नहीं पी जाऊँगा? गदा से दुर्योधन के जाँघों को नहीं चूर्ण कर डालूँगा? दुःशासन की छाती फाड़कर उसका खून पी जाऊँगा।

दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने दुर्योधनस्य च यथा गदयोरूभंगे।
तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा।।[3]

अर्थात् दुःशासन के वक्षःस्थल के रक्तरूपी जल के पीने के विषय में तथा गदा से दुर्योधन की जाँघे तोड़ने के विषय में तेजस्वी पाण्डवों की जैसे प्रतिज्ञा पूर्ण हुई वैसे ही समरांगण में जयद्रथ के वध के विषय में भी समझनी चाहिए।

आचार्यस्य त्रिभुवनगुरोर्न्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्-
द्रोणस्याजौ नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य।
मौलौ पाणिं पलितधवले न्यस्य कृत्वा नृशंसं
धृष्टद्युम्नः स्वशिविरमयं याति सर्वे सहध्वम्।।[4]

अर्थात् युद्ध में शोक से शस्त्र का परित्याग किए हुए, त्रिलोकी के गुरू, नेत्र-जल से धुले हुए, भीगे मुख वाले, आचार्य द्रोण के पके हुए बालों के कारण श्वेत शिर पर हाथ रखकर शिर काटकर यह धृष्टद्युम्न अपने शिविर को जा रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों में जिस प्रकार युद्धों का बहुतायत वर्णन प्राप्त होता है उसी प्रकार वेणी संहार नाटक में भी विविध स्थलों पर युद्ध का प्रायः वर्णन हुआ है। युद्ध की दृष्टि से वेदों का प्रभाव वेणी संहार नाटक पर कहीं-कहीं पूर्णतः एवं कहीं-कहीं अंशतः पड़ा है।

द्यूतक्रीड़ा :- और जुआ खेलने का वर्णन वेणीसंहार में मिलता है -

यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः।
दीव्यताक्षैस्तदानेन नूनं तदपि हारितम्।।[5]

अर्थात् इस राजा का वह शक्तिशाली, अति प्रचण्ड जो क्षत्रिय तेज था वह भी पाशों के खेलते हुए उसे निश्चय ही गवां दिया।

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा
प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपते राज्ञया द्यूतदासी।
अस्मिन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा
ब्राह्वोर्वीर्यातिरेकद्रविणगुरूमदं मामजित्वैव दर्पः।।[6]

अर्थात् मुझ जगत्पति की आशा से, राजाओं के समक्ष जुए में जीती गई दासी तुझ पशु की, अर्जुन की ओर इशारा करके तेरी तथा उस राजा युधिष्ठिर की अथवा उन दोनों नकुल और सहदेव की पत्नी की शिर का बाल पकड़कर खींची गई इस वैर के प्रसंग में जो राजा मारे गए हैं बतलाओं उन लोगों ने क्या अपकार किया था? उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर जुआ खेलने की दृष्टि से वेदों का प्रभाव वेणीसंहार नाटक पर अवश्य दिखाई देता है।

वर्ण-व्यवस्था :-

हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना दुःशासनेनाज्ञया,
पांचाली मम राजचक्रपुरतो गौर्गौरितिव्याहृता।।
तस्मिन्नेव स किं नु गाण्डिवधरो नासीत्पृथानन्दनो
नूनः क्षत्रिय वंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत्।।[7]

अर्थात् मेरी आज्ञा से दुःशासन के द्वारा हाथ से खींचे गए अस्त्र व्यस्त केश और वस्त्रवाली द्रौपदी राज-सभा के सामने गाय हूँ। ऐसा चिल्लाती थी। उस

समय में गाण्डीव नामक धनुष को धारण करने वाला कुन्ती पुत्र अर्जुन नहीं था क्या? अथवा क्षत्रिय के कुल में उत्पन्न, शस्त्र चलाने में निपुण युवक के लिए वह कोप करने का स्थान या कारण क्या नहीं था?

तृतीय अंक में राक्षस का कथन है- **वसागन्धे, ब्राह्मणशोणितं खल्वेतद्**[8] अर्थात् वसागन्धे, अरे यह तो ब्राह्मण का रक्त है तो अन्य स्थल पर आया है कि- **ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषात्सर्वं तदेक पद एवं कथं निरस्तम्**[9] अर्थात् वह सब मेरे भाग्य के दोष के कारण एक तो ब्राह्मण श्रेष्ठ दूसरे आचार्य तीसरे पिता के विषय में, एक साथ ही आपके द्वारा कैसे छोड़ दिया गया? तो एक अन्य स्थल पर अश्वत्थामा का कथन है- **भो भोः, पाण्डव मत्स्य, सोमक तथा मगधाद्याः क्षत्रियाप सदाः**[10] अर्थात् हे हे पाण्डव, मत्स्य, सोमक तथा मगध आदि देश के अधम क्षत्रियों। इसी प्रकार अन्य स्थल पर भी आया है-

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिताः
क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः।
तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे
यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः।।[11]

एक अन्य स्थल पर आया है- **जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विदमुद्धृतम्**[12] अर्थात् ब्राह्मण जाति के कारण तुम वध न करने के पात्र हो। **सुक्षत्रिया क्व भवती क्व च दीनतैषा**[13] अर्थात् कुलीनक्षत्रिय वीरांगना आप कहाँ। **यावत्क्षत्रं तावत्समरविजयिनोजिता हताश्च वीराः**[14] अर्थात् जब से क्षत्रिय हैं तब से समर विजयी वीर जीते गए तथा मारे गए हैं। **अयि सुक्षत्रिये**[15] अर्थात् **अरी क्षत्रियकुलांगने**। अतः **क्रोधः कार्यो न खलु मयि चेत्प्रेम भवतो वन गच्छेर्मा गाः पुनरकरुणां क्षात्रपदवीम्**[16] अर्थात् जंगल में चले जाना किन्तु निर्दय क्षत्रिय के मार्ग पर फिर से मत आना। **क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि**[17] अर्थात् क्रोधी क्षत्रिय हूँ। इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर कर्ण का कथन है- **(सक्रोधम्) अरे रे वाचाट, वृथाशस्त्रग्रहण- दुर्विदग्ध वटो।**[18]

निर्वार्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम्।
यथा पांचालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना।।[19]

अपि च-

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।।[20]

अर्थात् अरे रे बकवादी, निष्फल शस्त्र धारण करने से अभिमानी, बाभन (ब्राह्मण) के बच्चे बलहीन या बलशाली हो, अस्त्र को मैंने नहीं छोड़ा है, जैसा कि द्रुपद के पुत्र से भयभीत हुए, भुजबलशाली, तुम्हारे पिता ने क्रिया है। सूत्र अथवा सूत्रपुत्र अथवा जो कोई मैं होऊँ। किसी कुल में जन्म लेना भाग्य के अधीन होता है किन्तु पुरुषार्थ मेरे अधीन है। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेदों का वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से वेणीसंहार नाटक पर प्रभाव पड़ा है।

यज्ञ :- वेदों के यज्ञ संबंधी तत्त्वों का प्रभाव अन्य ग्रन्थों सहित वेणीसंहार नाटक पर भी पड़ा है-

यत्सत्यव्रतभंगभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं
यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता।
तद्यूतारणिसंभृतं नृपसुता केशाम्बराकर्षणैः
क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते।।[21]
चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः
संग्रामाध्वर दीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता।
कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं
राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोन्दुन्दुभिः।।[22]

अर्थात् सत्यप्रतिज्ञा के उल्लंघन से भयभीत मन वाले युधिष्ठिर के द्वारा जो यत्नपूर्वक मन्द की गई थी, पलाश या शमी की सूखी लकड़ी लेकर उसमें थोड़ा गड्ढा बना दीजिए और एक दूसरी लकड़ी लेकर उसे नुकीली बना लीजिए। गड्ढा वाली लकड़ी को जमीन पर रख दीजिए तथा नुकीली लकड़ी को उसी गड्ढे में डालकर मथनी की तरह चलाइए। अधिक गरम हो जाने के बाद उसमें से आग निकल आएगी इन्हीं दोनों काष्ठों को अरणि कहते हैं। अरणि की आग से ही पवित्र यज्ञादि करने का विधान है। यज्ञ के पुरोहित के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति ऋत्विज कहे जाते हैं। मुख्यतया ऋत्विक चार होते हैं- होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। यज्ञ का संचालन करने वाले को प्रधान आचार्य या कर्मोपदेष्टा कहते हैं।

प्रधान यजमान जो यज्ञ को निष्पन्न करता है वह दीक्षित कहलाता है। प्राचीन काल में यज्ञ में पशुओं की बलि दी जाती थी। यहाँ संग्राम रूपी यज्ञ के लिए दुर्योधनादि कौरव ही पशु कहे जा रहे हैं क्योंकि उन्हीं का ही वध अभीष्ट है। प्राचीन समय में जब चक्रवर्ती सम्राट यज्ञ करता था, उस समय उसकी ओर से पूरे देश में नगाड़ा पीटकर उसके यज्ञ के घोषणा की जाती थी। उससे सूचना पाकर सभी अधिनस्थ राजा यज्ञ में उपस्थित होते थे। जो नहीं आता था वह विद्रोही माना जाता था। अतः दण्डनीय भी होता था। यहाँ भी दुन्दुभिः अपने पक्ष के राजाओं को युद्ध स्थल पर एकत्रित होने के लिए बजाई जाती थी।

वेणीसंहार नाटक में भी विविध स्थलों पर शकुन विचार स्वप्न आदि से सम्बन्धित उल्लेख हमें प्राप्त होता है। प्रथम अंक में भीमसेन का कथन है कि- मन्थन से क्षुब्ध सागर से जल से व्याप्त गुफाओं वाले, घूमते हुए मन्दराचल की ध्वनि के समान गम्भीर, लाख डमरूओं तथा दश हजार नगाड़ों पर एक साथ प्रहार होने पर गरजती हुई प्रलयकालीन मेघ-घटाओं की परस्पर टकराहट की तरह भयंकर, द्रौपदी के क्रोध का सूचक, कुरूवंश के विनाश के अपशकुन स्वरूप प्रचण्ड वायु के समान, हमारे सिंह गर्जन की प्रतिध्वनि के सदृश यह भेरी किसके द्वारा बजाई जा रही है।[23] अन्य स्थल पर राजा का कथन है कि असावधानी के कारण मेरे द्वारा गले में बाहुरूपी लताओं का पाश शिथिल किया गया है क्या? आज नींद उचटने पर मैंने करवटें बदलने में मेरे द्वारा सम्मानित नहीं की गई हो क्या? स्वप्न में तुम्हारे द्वारा मैं दूसरी स्त्री के साथ बातचीत में तल्लीन होने के कारण तिरस्करणीय समझ लिया गया है क्या? हे प्रिये, सेवक की तरह भर्त्सना के पात्र मुझमें किस दोष को देख रही हो।[24] इसी तरह अन्य स्थल पर राजा का कथन है कि - यह सच है कि शुभ-अशुभ स्वप्न लोगों के द्वारा क्रमशः देखे ही जाते हैं। बाई आँख के फड़कने को सूचित करके अरे अपशकुन मुझ दुर्योधन के भी हृदय को व्यग्र बना रहा है। ग्रहों की गति, स्वप्न, अपशकुन और मनौती संयोगवश ही फल देते हैं।[25]

संदर्भ -

1. *वेणीसंहार- 2.7,*
2. *वही - 1.15*